RNI No. 7127/60

डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City / 411 2020-22

संघशक्ति

मासिक समाचार पत्रिका

वर्ष : 59 अंक : 07 प्रकाशन तिथि : 25 जून कुल पृष्ठ : 36 प्रेषण तिथि : 4 जुलाई 2022

शुल्क एक प्रति : 15/- वार्षिक : 150/- रुपये पंचवर्षीय 700/- रुपये दस वर्षीय 1300/- रुपये

जीने के बहाने मुझे आये नहीं, रंग बिरंगे रंग मुझे भाये नहीं
तेरे ही रंग में जीने के ढंग हैं, प्राणों में प्राण को जोड़ दे।

नव चयनित को हार्दिक बधाई

डॉ. अभितेज सिंह शेखावत

पुत्र श्री सतपाल सिंह शेखावत
जयपहाड़ी, झुन्झुनू
पद– सहायक आचार्य, कृषि महाविद्यालय,
बायतु, बाड़मेर,
कृषि विश्वविद्यालय, जोधपुर

हर्षवर्धन सिंह

पुत्र श्री नाहर सिंह जाखडी
(जालोर)
मास्टर ऑफ साइंस एवं
पी.एच. डी. (रसायन विज्ञान)
भारतीय विज्ञान संस्थान, बैंगलोर

हमारे जालौर सम्भाग के नाहर सिंह जी जाखड़ी के होनहार पुत्र का Integrated पी.एच. डी. में चयन होने व जंवाई साहब का नवीन पद (सहायक आचार्य) पर नियुक्ति होने पर पूरे सम्भाग की ओर से हार्दिक शुभकामनाएं।।

सहयोगी बंधु संभाग जालोर :
भवानी सिंह मुंगेरिया, ईश्वर सिंह सांगाणा, मदनसिह थुंबा, लाल सिंह सिराना, गणपतसिंह भवरानी, ईश्वर सिंह देसू, सुमेर सिंह उथमण, मोतीसिंह सेवाड़ा, प्रेम सिंह अचलपुर, नेहपाल सिंह दुधवा, दीप सिंह दूदवा, पूर्ण सिंह दहीवा, देवराज सिंह मांडानी, गजेन्द्र सिंह जाविया, राजेंद्र सिंह भवरानी, महेंद्र सिंह कारोला, डूंगर सिंह पूनासा, खुमान सिंह दुधवा, महोब्बत सिंह धींगाणा, बहादुर सिंह सारंगवास, सरूप सिंह केरिया, गणपतसिंह पुर, ईश्वर सिंह चौरा, अमर सिंह ऊण, संग्राम सिंह देलदरी, हीर सिंह लोडता, सुमेर सिंह कालेवा, हिम्मत सिंह आकुआ, रेंवत सिंह जाखडी, हनुवंत सिंह गादेरी, महिपाल सिंह केसुआ, कल्याण सिंह सांपणी, अर्जुनसिंह देलदरी

संघशक्ति

4 जुलाई, 2022

वर्ष : 58 अंक : 07

-: सम्पादक :-

लक्ष्मणसिंह बेण्यांकाबास

शुल्क - एक प्रति : 15/- रुपये, वार्षिक : 150/- रुपये, पंचवर्षीय : 700/- रुपये, दस वर्षीय : 1300/- रुपये

विषय - सूची

विषय	लेखक	पृष्ठ
समाचार संक्षेप		04
चलता रहे मेरा संघ	श्री भगवान सिंह रोलसाहबसर	05
पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)	श्री चैनसिंह बैठवास	06
भ्राता-सखा-भक्त-सेवक	श्री भगवान सिंह रोलसाहबसर	08
पृथ्वीराज चौहान (तृतीय)	श्री विरेन्द्र सिंह मांडण	11
यदुवंशी करौली का इतिहास	राव शिवराजपाल सिंह इनायती	12
विचार सरिता (द्विसप्रति लहरी)	विचारक	15
छोड़ो चिन्ता-दुश्चिन्ता को	स्वामी श्री जगदात्मानन्द	16
महान क्रान्तिकारी राव गोपालसिंह खरवा	श्री भँवरसिंह मांडासी	19
खुद को पहचानो, हो कौन तुम	श्रीमती अंजना कुड़ी	21
साँसों की गठरी	श्री गिरधारी सिंह डोभाड़ा	22
गरासणी	श्री वनराज सिंह	24
एकलिंग दीवान राष्ट्र गौरव राणा क़ीक़ा	श्री अरविन्द सिंह खोड़िया	26
यह है अपना संघ साथियों इस फर्ज को.....	सुश्री दीया चौहान	27
देवी राठासण मंदिर (राष्ट्रश्येना) मरूवास....	सुश्री डिम्पल शेखावत	28
अपनी बात		34

समाचार संक्षेप

उच्च प्रशिक्षण शिविर सम्पन्न :

कोविड व्याधि के कारण सन् 2019 में गनोड़ा में सम्पन्न उच्च प्रशिक्षण शिविर के पश्चात् बड़े शिविर हेतु अनुकूल समय ही नहीं मिल पाया। इसलिए 19 मई से 29 मई, 2022 तक गनोड़ा के बाद पहला उच्च प्रशिक्षण शिविर बाड़मेर में सम्पन्न हुआ। इस बीच समय की अनुकूलता के अनुसार कुछ प्राथमिक तथा कुछ माध्यमिक शिविर तो विभिन्न स्थानों पर सम्पन्न होते रहे हैं। वर्चुअल माध्यम से सम्पर्क बनाये रखने के कार्यक्रम भी चलते रहे परन्तु शैक्षणिक अभ्यास की प्यास बुझ नहीं पा रही थी। इसलिएबाड़मेर में गेहूं रोड़ पर स्थित 'आलोक आश्रम' में शिविर होना निश्चित हुआ तब से ही जो समाचार मिल रहे थे उससे शिविर में बहुत बड़ी संख्या में शिविरार्थी पहुँचने की संभावना थी। अत: शिविरार्थियों की संख्या सीमा में रखने के लिये कुछ प्रतिबन्ध लगाए गये। फिर भी 540 की पूरा शिविर करने वालों की संख्या के अतिरिक्त कुछ दिनों के लिए शिवरार्थी बनने वालों की भी संख्या अधिक रही। राजस्थान और गुजरात के अतिरिक्त उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश तथा दक्षिण भारत में प्रवासी बन्धुगण शिविर में पहुँचे। शिविर के दैनिक कार्यक्रमों की तरह पहले ही दिन प्रात: जागरण के समय से ही शिविर की गतिविधि प्रारम्भ हो गई। इसीलिए शिविरार्थियों को उसके पूर्व ही शिविर स्थान पर पहुँचने का निर्देश था।

पूरे शिविर में माननीय संरक्षकश्री का सान्निध्य मिला। कुछ वरिष्ठ स्वंयेवक भी उपस्थित रहे पर शिविर संचालन की पूरी जिम्मेदारी संघप्रमुखश्री ने अपने युवा साथियों के साथ निभाई। सभी कार्यक्रम बड़े सुचारू रूप से सम्पन्न होते रहे। शिविर का अनुशासन और शिविर की व्यवस्था संघ साधना के अनुकूल बहुत अच्छी थी। खेलने के लिये रेतीले टीबे मिल गये तो रिकार्ड तोड़ गर्मी के इन दिनों में रहने के लिये बड़े हॉल सुखदायी रहे। प्रांगण में बनी सीमेन्ट की सड़क तो जैसे शिविरार्थियों के नहाने-धोने के लिये ही बनाई गई हो। चार बड़े-बड़े हॉल तो जैसे बड़ी संख्या के बीच होने वाले प्रवचन व चर्चाओं के लिये ही अस्तित्व में आए हों। क्षत्रिय के रूप में अपना उत्तरदायित्व निभाने की तैयारी के साथ हर प्रकार के कष्ट में भी जिनकी उमंग बनी रहती हो, ऐसे इतने बड़े परिवार के बीच स्नेहिल वातावरण में ग्यारह दिन तक धूम मचाने के पश्चात् किसके मन में संघ से अटूट सम्बन्ध बनाने का संकल्प नहीं उभरेगा, जरूर उभरेगा।

इसी 19 से 29 मई की अवधि में बालिकाओं का उच्च प्रशिक्षण शिविर बाड़मेर जिले में ही चोहटन के निकट विरात्रा में सम्पन्न हुआ। विरात्रा माता के मंदिर क्षेत्र में ही बनी एक बड़ी धर्मशाला उनके लिए शिविर स्थान थी। धर्मशाला में ही लगी दूब उनको खेलने के लिये मिली। विरात्रा मंदिर ट्रस्ट ने शिविर की व्यवस्था में पूरा सहयोग दिया। संख्या के सम्बन्ध में बालिकाओं पर भी प्रतिबन्ध लगाया गया था, फिर भी लगभग 180 बालिकाओं ने शिविर में प्रशिक्षण पाया। भयंकर गर्मी का मौसम और वह भी बाड़मेर जिले में शिविर तो क्या-क्या बीतेगा, ऐसी शंकाएँ लेकर कुछ बालिकाएँ आई थी लेकिन शिविर में कुछ अनुकूलता मिली तो ऐसी रम गई कि मौसम भयंकर गर्मी का है, यह बात ही ध्यान में नहीं आई। बालिकाओं ने एक दिन भारत-पाक सीमा का भ्रमण किया तो विरात्रा में चोटी पर बने मंदिर पर भी पहुँची। निकट ही ऊँचाई पर स्थित वैर का थान मंदिर तक भी चढकर पहुँची जो पू. तनसिंहजी का तपस्या स्थान भी माना जाता है।

माता निर्माता होती है। अपनी संतान का उपयुक्त जीवन निर्माण करने के लिये संस्कारों का बीज डालने वाली माता ही है। यही नहीं समाज और राष्ट्र के निर्माण में भी नारी का विशेष महत्त्व है। क्षत्रिय बालिकाएँ ऐसी माता बनने की तैयारी करें, ऐसा शिक्षण बालिकाओं ने पाया।

(शेष पृष्ठ 10 पर)

चलता रहे मेरा संघ

{माननीय भगवानसिंहजी रोलसाहबसर द्वारा संघशक्ति भवन में आयोजित विशेष शिविर में दिनांक 17.12.2007 को दिया गया उद्‌बोधन}

श्री क्षत्रिय युवक संघ में एक उत्तरदायी स्वयंसेवक कैसा होता है, इसके लिये हम शिविरों में एक प्रवचन सुनते हैं-'अधिकारी साधक'।। हमारा आचरण, हमारी बात, हमारे विचार, हमारा प्रकटीकरण अधिकारिक हो, तभी हम अधिकारी साधक बन पाएँगे। आदर्श स्वयंसेवक बन पाएँगे। हम यह जानते हैं कि आदर्श और यथार्थ में अन्तर रहेगा, परन्तु प्रयास यह बनाये रखना है कि यह अन्तर कम से कम हो। आदर्श और यथार्थ दो किनारे हैं और साधना इन दोनों किनारों को मिलाने की यात्रा है। हमारे यथार्थ में आदर्श की तुलना में कुछ कमियाँ होंगी। इस यथार्थ को स्वीकार करें परन्तु आदर्श की ओर नजर रखकर यथार्थ की कमियों को दूर करते हुए आगे बढना है। हमने यथार्थ की जानकारी प्राप्त कर ली, अर्थात् अपनी साधनागत कमियों को जान लिया लेकिन केवल जानकारी प्राप्त कर ली पर उस पर वांछित कार्य कर उन्हें दूर करने के लिये कुछ न किया गया तो यह जानकारी विकार उत्पन्न करेगी। यह जानकारी भी दोष बन जाएगी। हमने बार-बार सुनकर आदर्श को जाना है पर यदि उस आदर्श जानकारी के अनुकूल हमारा आचरण न बने तो साधक जीवन समाप्त हो जाता है। आदर्श और यथार्थ, दोनों की जानकारी प्राप्त कर इनके अन्तर को कम से कम करते रहना ही साधना की सही दिशा है।

श्री क्षत्रिय युवक संघ की बात जानने की तो है ही, पर उससे कहीं ज्यादा करने की है। हम सुनते ही रहें पर उसके अनुकूल करते कुछ नहीं तो संघ को बड़ी पीड़ा होती है। संघ की बात सुनना और उसके अनुकूल करना, दोनों ही जारी रहें, यह आवश्यक है। हम केवल करते रहें पर समय-समय पर सुनते रहना बन्द कर दें तो भी खतरा हो सकता है। ऐसी स्थिति में साधना की नई जानकारियाँ न जान सकेंगे अत: हमारे कदम नहीं मिल पाएँगे उनके साथ जो सुनते भी हैं और करते भी हैं। अत: केवल करें और सुनें नहीं तो ऐसे लोग भी सामुहिक साधना में बाधक बन जाएँगे। साधना की सिद्ध स्थिति तक, अर्थात् सिद्ध बनने तक सुनने और करने की प्रक्रिया हमें जारी रखनी है। इस बात की सावधानी बरतने की आवश्यकता है।

जो साधना मार्ग में जितनी विशिष्टता प्राप्त करता हुआ आगे बढ़ जाता है, उसे उतना ही अधिक विनयी होना चाहिए, उतना ही क्षमाशील होना चाहिए। ऐसा न हुआ तो विकृति पैदा होने का खतरा है। यह विकृति स्वयं साधक के लिए भी खतरा है तो उसका अनुसरण करने वाले साधकों के लिए भी खतरा है। इसलिए हमें अकुटिल, निर्दोष और निष्पाप बनना है। श्री क्षत्रिय युवक संघ ने हम में कुछ अच्छाई देखी और संघ ने हमें अच्छा माना। हमारी यह अच्छाई बढती रहनी चाहिए। यह ठूंठ बनकर न रह जाए। इस अच्छाई में अच्छाई की नई कोंपले फूटती रहनी चाहिए। संघ में कार्यरत अन्य हरे पेड़ों को देखकर हम अपनी स्थिति को देखें और वैसा ही हरा-भरा, छायादार अपने आपको बनाने का प्रयास करते रहें। सुनना, देखना और करना, यही हमारी साधना की दिशा निरंतर बनी रहे और अच्छाई बढती रहे। हम आज तक संघ में हैं, संघ में खूब चले हैं लेकिन यदि कभी हमारी दिशा बदल गई या हमारा चलना बन्द हो गया तो मंजिल मिलेगी नहीं। राह रोकने वाले स्वयं तो रुक ही जाते हैं वे अन्यों की राह रोकने वाले भी बन जाएँगे। इसलिए हमारे लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि हमारी साधना में किसी भी प्रकार की रुकावट न आ पाये, ऐसी सावधानी पूर्वक हमको चलते रहना है, आगे से आगे। ●

संघशक्ति/4 जुलाई/2022

पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)

''जो कुछ देखा, समझा व अनुभव किया'' – चैनसिंह बैठवास

सामान्य सी बात है कि कोई व्यक्ति आज किसी का अच्छा मित्र है, किसी से उसका घनिष्ट सम्बन्ध है, वह राजनीति में या सरकार में या अर्ध सरकार या गैर-सरकार में किसी बड़े पद पर पहुँच जाता है, तो कालांतर में वह अपने नये-नये सम्बन्धों के बीच पुराने सम्बन्धों को भूल जाता है, कारण कि पद की विशिष्टता उन पर हावी हो जाती है। आज ऐसा हर विशिष्ट व्यक्ति अपनी विशिष्टता के बल पर विशिष्ट अधिकार चाहता है। यदि कोई विशिष्ट नहीं भी है, तो भी वह किसी विशिष्ट से अपने सम्बन्ध की धौंस जमाकर हर क्षेत्र में विशिष्ट व्यवहार की अपेक्षा करता है, चाहे वह क्षेत्र सरकारी हो, अर्द्ध सरकारी हो या गैर-सरकारी ही क्यों न हो? यह बात हर जगह देखी जा सकती है। लेकिन जो लोग वास्तव में विशिष्ट होते हैं, उनके जीवन को देखें, वे विशिष्ट होते हुए भी अपने को विशिष्ट नहीं दर्शाते। वे साधारण जन के साथ साधारण बनकर रहते हैं और साधारणता में आनन्द की अनुभूति करते हैं। और साधारणजन को विशिष्ट बनाने का प्रयास करते हैं। पूज्य श्री तनसिंहजी ऐसे ही व्यक्तित्व के धनी थे। वे महापुरुष थे, जन्म के साथ ही विशिष्ट क्षमताएँ लेकर आये थे। महापुरुष विशिष्ट क्षमताएँ लेकर इसलिए आते हैं ताकि वे साधारण जन को विशिष्ट बना सकें।

पूज्य श्री तनसिंहजी विशिष्ट क्षमताओं से परिपूर्ण थे, पर उन्होंने अपनी इन विशिष्टताओं को, अपनी इस महानता को न तो अपने पर कभी हावी ही होने दिया, न कभी लोगों के सामने इनको दर्शाया ही। उन्होंने अपने आपको सदैव सामान्य बनाकर पेश किया ताकि सामान्य से सामान्य व्यक्ति उनकी इस महानता से लाभान्वित हो सके। उनका यह सामान्य बना रहना कोई बनावटी नहीं बल्कि नैसर्गिक था, इसलिए उनमें स्वभावत: प्रकट होता रहता था। पूज्य श्री तनसिंहजी का महापुरुषत्व उनकी सामान्यता (साधारणता) में समाहित था। उनकी आंतरिक विशिष्टता को तो हर कोई जान न पाया लेकिन उन्होंने सांसारिक विशिष्टिताएँ यानी भौतिक उपलब्धियाँ जो हासिल की, सामान्य जन उनको ही विशिष्टता मानता है, लेकिन पूज्य श्री व्यवहार में सदा साधारण बने रहे। उनके जीवन की ऐसी ही एक घटना का उल्लेख यहाँ किया जा रहा है।

सन् 1977 में जब पूज्य श्री तनसिंहजी दोबारा सांसद बने, तब की यह घटना है। वे दिल्ली में थे। एक दिन पूज्य श्री को हृदय सम्बन्धी कुछ समस्या हुई तो उन्हें तुरन्त राम मनोहर लोहिया अस्पताल ले जाया गया। अस्पताल में पूज्य श्री सामान्य वार्ड में जाकर लेट गये। पूज्य श्री भगवानसिंह जी जो वर्तमान में संघ के संरक्षक हैं, उनके साथ में थे, ने आवश्यक कागजी-कार्यवाही पूर्ण करवाई। डॉक्टर जब देखने आया तो वह फाइल पर रहने का पता देखकर चौंका। उसने पूछा कि आप नार्थ एवेन्यू में रहते हो? पूज्य श्री ने उत्तर दिया, 'हाँ'। डॉक्टर को विश्वास नहीं हुआ। वह बोला कि आप वहाँ कैसे रह सकते हो, वहाँ तो सांसद रहते हैं। पास में खड़े पूज्य श्री भगवानसिंह जी ने बताया कि आप सांसद ही हैं इसलिए वहाँ रहते हैं। यह सुनते ही डॉक्टर हतप्रभ रह गया एवं पूज्य श्री तनसिंहजी से वी.आई.पी. वार्ड में शिफ्ट होने का आग्रह किया। पूज्य श्री ने सहज भाव से उस आग्रह को स्वीकार कर डॉक्टर के साथ वी.आई.पी. वार्ड में चले गए। यह था उनका सहज एवं साधारण जीवन। पूज्य श्री तनसिंहजी ने अपने बारे में कहा –

''हाँ, मैं इतना ही साधारण आदमी हूँ, इतना ही साधारण मेरा जीवन है, इतनी ही साधारण मेरी आत्मकथा है और मैं चाहता भी यही हूँ कि ऐसा ही साधारण बना रहूँ। यदि मुझे विशिष्टता अपने अन्दर दिखाई देती है तो उसे इपनी परीक्षा मानता हूँ। वास्तविकता तो यही है कि मैं साधारणता ही पसन्द करता हूँ। यदि मुझे तुम कहीं ढूंढना चाहो, तो देख लेना-राजमहल की अपेक्षा किसी झौंपड़ी में अधिक प्रसन्नतापूर्वक बैठा होऊँगा, यदि किसी समारोह में ही होऊँगा तो सबसे पीछे अकेला दिखाई दूंगा।

''मैं एक अत्यन्त साधारण आदमी हूँ और इसलिए साधारण आदमी की संसार में कोई गिनती नहीं हुआ करती। उसका नाम भी साधारण, उसकी जाति भी साधारण, उसका विचार भी साधारण और उसका स्वप्न भी साधारण। मैं यही चाहता हूँ कि लोग मुझे इसी रूप में जानें और जानते रहें ताकि दुनिया में यह सिद्ध हो सके कि साधारण लोगों की असाधारणता जब इस दुनिया में प्रगट होगी तो संसार के बहुत बड़े चमकते हीरे उनके सामने बिल्कुल फीके पड़ जायेंगे। इसके सिवाय मैं असाधारण बनकर करूँगा ही क्या? जिन्हें मैंने अपने स्वप्न बताए और जिन्होंने अपने जीवन मुझे दिये, वे तो नीचे सोते रहें तो मैं खाट पर सोने की विशिष्टता कर ही कैसे सकता हूँ। मैंने कठिनाई में और सुख में अपने बन्धुओं के साथ रहने का निश्चय किया है, क्योंकि अब तक मेरे बन्धु साधारण ही हैं, इसलिए मैं भी साधारण बना रहना चाहता हूँ।''

एक घटना 1959 की है जिसमें साधारण लोगों के बीच में पूज्य श्री ने अपनी साधारणता की झलक दिखलाई। 1959 में हल्दी घाटी उच्च प्रशिक्षण शिविर की घटना है जब पूज्य श्री राजस्थान विधानसभा में दूसरी बार विधायक थे। खुले में शिविर, सभी शिविरार्थी पेड़ों के नीचे अपने-अपने घटों में रहते थे। एक रात तेज तूफान एवं उसके बाद मूसलाधार बारिश हुई। सभी शिविरार्थी अपने कपड़े आदि सामान पेड़ों के तनों में रखकर चारों तरफ बैठ गए। पूज्य श्री भी शिविर कार्यालय का सामान अपनी जीप आर.जे.सी. 116 के नीचे रख ओट लेकर बैठ गए। इतने में एक बरसाती नाले का पानी जीप के नीचे से बहता हुआ कार्यालय के सभी कागजात एवं सामान को गीला कर गया। सुबह तक सब कुछ भीग चुका था। प्रात: कालीन प्रार्थना के बाद सभी पहाड़ी पर चढ गए एवं सहगायनों की धुन में नाचने लगे। रात के तूफान और मूसलाधार बारिश को जैसे सभी भूल चुके थे। पूज्य श्री तनसिंहजी सबके बीच हाथ में एक लाठी लिए नाच रहे थे। अपनों के बीच जो खो जाये, अपने आपको बिसरा दे, वही परायों को अपना बना लेता है। पूज्य श्री का अपनों को विशिष्ट बनाने का यही उपक्रम निरंतर और नियमित रूप से चलता रहा।

सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक क्षेत्र में व्यक्तिगत उपलब्धियों के लिये पूज्य श्री के लिये अनेक मार्ग खुले थे लेकिन उन्होंने सदैव इन व्यक्तिगत उपलब्धियों को ठुकराया और आध्यात्मिक क्षेत्र में भी अकेले कुछ पाने की भावना को तिलांजलि देकर सामूहिक प्रगति का मार्ग बताया।

पूज्य श्री एक प्रतिभावान व्यक्तित्व के धनी होते हुए भी सदैव साधारणता में ही रहे, इसी में ही आनन्द लेते रहे, क्यों? इस सम्बन्ध में पूज्य श्री स्वयं ने बताया-

''साधाणता में ही मेरी सम्पत्ति है। मेरी समस्त असाधारणताएँ समाजिक न्यास है, जिसका हिताधिकारी समाज का प्रत्येक व्यक्ति है। इसीलिए मेरी विशिष्टताओं के फल को अकेला मैं ही कैसे खा सकता हूँ? जब तक मेरी असाधारणताएँ सामान्य जन की साधारणताएँ नहीं बन जाती, तब तक मुझे हठपूर्वक उन व्यक्तिगत भोगों और कामनाओं से बचना है, जो मेरे प्रत्येक साथी को उपलब्ध नहीं हैं, फिर वे कामनाएँ चाहे मुक्ति की ही क्यों न हो।''

पूज्य श्री तनसिंहजी विशिष्ट थे, असाधारणताओं से सम्पन थे, पर उन्होंने अपनी प्रतिभा पर कभी अधिकार जताया ही नहीं, जीवन में कभी इसका अपने लिये उपभोग किया ही नहीं। अपनी विशिष्टता को अपने साथियों में वितरित कर उन्हें विशिष्ट बनाने का प्रयास वे जीवन पर्यन्त करते रहे और उन्होंने अपने साथियों को, अपने स्वयंसेवकों को भी यही संदेश दिया कि-

''सच्चा साधक कभी अधिकारों की कामना नहीं करता, क्योंकि वह केवल कर्तव्यों को ही अधिकार मानता है। उसकी प्रतिभा का लक्ष्य कर्तव्य पालन को सुगम बनाना है, न कि अपने भोगों के लिये साधन जुटाना। प्रतिभा तो प्रकृति की किसी व्यक्ति विशेष को प्रदत वह थाती है, जिसका सदुपयोग प्रतिभावान के असाधारण बनने में नहीं किन्तु साधारण लोगों को प्रतिभावान बनाने में है। वह तैराक, कितना निन्दनीय है, जो जहाज के क्षतिग्रस्त होने पर रक्षा नौकाओं को डूबने वालों की ओर न ले जाकर किनारे की ओर अकेला ही चल पड़े।''

(क्रमश:)

भ्राता-सखा-भक्त-सेवक

- भगवानसिंह रोलसाहबसर

माता-पिता के वचन पालन करने वाले भगवान श्रीराम को राज्याभिषेक के स्थान पर चौदह वर्ष के वनवास की आज्ञा हुई। वे माता कौशल्या के पास आज्ञा लेने गए। आज्ञा मिली। उसी समय मिथिलेश कुमारी सीताजी ने भी सासु से आज्ञा ले ली। लक्ष्मण जी को समाचार मिले तो दौड़े आए श्रीराम के पास। श्री रामचन्द्रजी ने भाई लक्ष्मण को हाथ जोड़े और शरीर तथा घर सभी से नाते तोड़े हुए खड़े देखा। छोटे भाई के मनोभावों को समझकर श्रीराम बोले,- ''जो लोग माता, पिता, गुरु और स्वामी की शिक्षा को स्वाभाविक ही सिर चढ़ाकर उसका पालन करते हैं, उन्होंने ही जन्म लेने का लाभ पाया है; नहीं तो जगत में जन्म व्यर्थ ही है। (मानस अयो. दोहा-70)।

हे भाई! हृदय में ऐसा जानकर मेरी सीख सुनो और माता-पिता के चरणों की सेवा करो। भरत और शत्रुघ्न घर पर नहीं हैं, महाराज वृद्ध हैं और उनके मन में मेरा (वन जाने का) दुख है। इस अवस्था में मैं तुमको साथ लेकर वन जाऊँ, तो अयोध्या सभी प्रकार से अनाथ हो जाएगी। गुरु, पिता, माता, प्रजा और परिवार सभी पर दुख का दु:सह भार आ पड़ेगा। अत: तुम यहीं रहो और सबका संतोष करते रहो नहीं तो हे तात! बड़ा दोष होगा। जिसके राज्य में प्यारी प्रजा दु:खी रहती है, वह राजा अवश्य ही नरक का अधिकारी होता है। हे तात! ऐसी नीति विचार कर तुम घर पर ही रह जाओ। यह सुनते ही लक्ष्मणजी बहुत ही व्याकुल हो गए। इन शीतल वचनों से वे सूख गए, जैसे पाले के स्पर्श से कमल सूख जाता है। प्रेमवश लक्ष्मणजी से कुछ उत्तर देते नहीं बनता। उन्होंने व्याकुल होकर श्री रामजी के चरण पकड़ लिये और कहा-हे नाथ! मैं दास हूँ और आप स्वामी हैं, अत: आप मुझे छोड़ ही दें तो मेरा क्या वश है? (मानस अयो. दोहा 70-71)

फिर विनती करते हुए निवेदन किया,-जगत में जहाँ तक स्नेह का सम्बन्ध है, प्रेम और विश्वास है, जिनको स्वयं वेद ने गाया है-हे स्वामी! हे दीन बन्धु! हे सबके हृदय की अन्दर की जानने वाले मेरे तो वे सब कुछ आप ही हैं। धर्म और नीति का उपदेश तो उसको करना चाहिए, जिसे कीर्ति, विभूति (ऐश्वर्य) या सद्गति प्यारी हो। किन्तु जो मन, वचन, कर्म से चरणों में ही प्रेम रखता हो, हे कृपासिन्धु! क्या वह भी त्यागने के योग्य है। (दोहा 71-3,4)

दया के समुद्र श्री रामचन्द्रजी ने भाई के कोमल और नम्रतायुक्त वचन सुनकर और उन्हें स्नेह के कारण डरे हुए जानकर, हृदय से लगाकर समझाया हे भाई! जाकर माता से विदा माँग आओ और जल्दी वन को चलो। श्रीराम की वाणी सुनकर लक्ष्मणजी आनन्दित हो गए। (दोहा 71-1)

मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण करने पर श्री नारायणसिंह जी की सरकारी नौकरी बीकानेर जिले के एक गाँव में लग गई। विवाह भी हो गया था। संघ का ग्रीष्मकालीन शिविर हल्दीघाटी में लगने वाला था। उनके मन में क्या हो रहा था, वे स्वयं भी नहीं जान पाए। नौकरी छोड़ सीधे शिविर में पहुँचे। पू. तनसिंहजी को पहले भी देखा था, शिविर पहले भी किए थे पर इस बार प्यास अनोखी थी। लगन विलक्षण थी। साध चातक की सी थी। चाह तीव्र थी। क्या घटा, कैसे घटा, क्यों घटा कुछ पता नहीं चला पर कुछ घट गया।

एक दिन शिविर में बरसात आई। पू. तनसिंहजी की हस्तलिखित सहगीतों की डायरी पानी में भीग गई। संयोग से पूज्य श्री के पास वह भीगी हुई डायरी देखी तो कह पड़े-''यह भीगी जुई डायरी मुझे दे दो न।'' पू. तनसिंहजी ने पहले तो पैनी नजर से घूर कर देखा और तुरन्त कह दिया, ''डायरी ही क्या, मैं तो तुम्हें पूरा संघ ही सौंप देना चाहता हूँ।'' वह घटना घट गई और श्री नारायणसिंहजी जन्मों-जन्मों के लिये श्री तनसिंहजी के हो गए। फिर कभी

मुड़कर नहीं देखा और श्री तनसिंहजी के जीवन की अन्तिम घड़ी तक साथ रहे। उनका दोनों का मौन-संवाद अद्‌भुत होता था। वे श्री तनसिंहजी के छोटे भ्राता थे, सखा थे, भक्त थे या सेवक थे, एक थे या सभी थे?

✻ ✻ ✻

श्री लक्ष्मण श्रीराम की अनुमति ले अपनी माता सुमित्रा के पास गए और जो लक्ष्मणजी ने कहा, वह सुनकर माता हिरणी की भाँति सहम गई। लक्ष्मणजी विचलित हो गए, भयभीत हो गए कि कहीं बना बनाया काम बिगड़ न जाये। परन्तु विदुषि और राम भक्त माता सुमित्रा ने कहा,-''हे तात! जानकी जी तुम्हारी माता है और सब प्रकार से स्नेह करने वाले श्रीराम तुम्हारे पिता हैं। जहाँ रामजी का निवास है, वहीं अयोध्या है। जहाँ सूर्य का प्रकाश हो, वहीं दिन है। यदि निश्चय ही सीता-राम वन को जाते हैं तो अयोध्या में तुम्हारा कुछ भी काम नहीं है। गुरु, पिता, माता, भाई, देवता और स्वामी, इन सबकी सेवा प्राण के समान करनी चाहिए। फिर श्री रामचन्द्रजी तो प्राणों से भी प्रिय हैं; हृदय के भी जीवन हैं और सभी के स्वार्थ रहित सखा हैं। (दोहा 73, 1-3)

सुमित्रा जी ने स्वयं को और लक्ष्मण को धन्य मान श्रीराम के साथ-साथ जाने की अनुमति देकर अनुगृहित किया और कहा, संसार में वही युवती स्त्री पुत्रवती है, जिसका पुत्र श्रीराम का भक्त हो। नहीं तो जो राम से विमुख पुत्र से अपना हित जानती है, वह तो बाँझ ही अच्छी। पशु की भाँति उसका पुत्र-प्रसव व्यर्थ ही है। (दोहा 74/1)

माता ने अनेकों प्रकार के भक्ति के सदुपदेश दिए। सुमित्रा जैसी माता भी धन्य। लक्ष्मण जैसे पुत्र भी धन्य। किसको बड़ा कहें, किसको छोटा?

✻ ✻ ✻

पू. तनसिंहजी के साथ रहते हुए अपने घर-परिवार को सम्भालने में नारायणसिंहजी ने कोई रुचि नहीं दिखाई। एक दिन उनके पिताजी से उनके काकोसा ने कहा-''यह नारायण पढ-लिखकर न तो कमाता है और न घर की परवाह करता है, आपको कुछ कहना चाहिए।'' पिता-पुत्र के बीच वर्ष में कदाचित एक-आध बार ही संवाद होता था। पिताजी ने काकोसा को कहा,-''पिता और काका में क्या भेद है, तुम ही कह दो ना।'' न तो इन्होंने कहा, न उन्होंने कुछ कहा। न माताश्री ने कुछ कहा, न पत्नी ने कभी कुछ कहा। सभी के परस्पर गहरा प्रेम और स्नेह। किसी को कोई अभाव नहीं खटकता। एक बार नारायणसिंह जी ने पिताश्री से समीप ही लगने वाले शिविर को देखने का आग्रह किया। पू. तनसिंहजी की अनुमति ले पिताजी को शिविर में ले चले। पिताजी ज्यादा पढे-लिखे नहीं थे। शिविर के सारे कार्यक्रम देखे-सुने। तनसिंहजी से भी मिले, बिना कोई विशेष संवाद के चले आए गाँव और अपने भाई से कहा,-''कमाता भी नहीं है, घर भी कम ही आता है परन्तु उसकी रहनी में कोई कमी नहीं। मार्ग अच्छा है, क्यों चिंता करते हो? अपना काम चल रहा है।'' इसके बाद काकोसा ने कभी कुछ न कहा।

उनके पिताजी ने, माताजी ने, न कभी तनसिंहजी के बारे में पूछा और न नारायणसिंहजी ने बताया। उनकी पत्नी सदैव संतुष्ट। चार भाई छोटे थे। न कभी भाई उनसे संवाद करते न उन्होंने कभी उनसे संवाद किया। पूरा का पूरा परिवार संतुष्ट। धन्य हैं नारायणसिंहजी, धन्य है उनका परिवार।

पू. तनसिंहजी की शरण जाने के तुरन्त बाद ही तनसिंहजी के दोनों हाथ (छत से नीचे गिरने से) टूट गए। उस समय पूज्यश्री के पास तीन-चार स्वयंसेवक रहते थे। किन्तु रह न पाए। एक-एक कर सभी छोड़ चले। दोनों हाथ टूटने पर व्यक्ति की क्या दुर्दशा होती है, यह तो वही जाने जिसके साथ ऐसा घटे। श्री नारायणसिंहजी ही लघुशंका और दीर्घशंका करवाते थे, वे ही सफाई करते, स्नान करवाते, भोजन करवाते थे। इस सम्बन्ध में तनसिंहजी स्वयं ने एक बार अपनी माताजी से कहा,-''जन्म देने वाली माँ आप हैं, पर आज तो यही मेरी माँ है।'' माताजी भी गद्‌गद् होकर बोली,-''धन्य हो तुम जिसे ऐसा भाई मिला और धन्य है नारायणसिंह जिसको तुम मिले।''

दोनों का मौन संवाद बड़ा प्यारा।

वे तनसिंहजी के भ्राता थे, सखा थे, भक्त थे या सेवक थे; एक थे या सभी थे।

✻ ✻ ✻

लक्ष्मण रात भर जागते थे, श्रीराम विश्राम करते थे। दोनों एक दूसरे में समाये हुए थे। लक्ष्मण के शक्ति बाण लगा तब राम विकल। श्रीराम को शक्ति बाण लगा तब लक्ष्मण विकल।

✻ ✻ ✻

श्री तनसिंहजी के परिवार में कोई काम आए तो नारायणसिंहजी के बिना पूरा नहीं। श्री नारायणसिंहजी के परिवार में काम पड़े तो श्री तनसिंहजी भी उनके साथ जाते। एक दूसरे में समाये रहते थे। श्री नारायणसिंहजी तो कभी बीमार होते ही नहीं थे। यदि ऐसा हो तो श्री तनसिंहजी की सेवा कौन करे? खाना बनाना, स्नान करवाना, कपड़े धोना, सभी किया। यात्राओं में सदैव साथ रहे। विधायक रहते, सांसद रहते श्री तनसिंहजी सदैव उनको साथ ही रखते। कभी कभार नारयणसिंहजी साथ न होते तो तनसिंहजी की विकलता को देखा जा सकता था।

1969 में पूज्य श्री नारायणसिंहजी को संघप्रमुख बना दिया। परन्तु वे कभी शिविर में तनसिंहजी के शिविर में न होने पर भी संघप्रमुख के स्थान पर खड़े न हुए। इस काल में तनसिंहजी चाहते थे कि नारायणसिंहजी की चाह के अनुरूप संघ चले और नारायणसिंहजी चाहते थे कि संघ तनसिंहजी की इच्छानुसार चले। कई बार देखने वालों को मतभेद नजर आता था। वे कैसे समझें ऐसे परस्पर अनुराग और सम्मान को। न किसी ने जाना और न कोई जान सकेगा कि वे तनसिंहजी के भ्राता थे, भक्त थे या सेवक। एक थे या सभी थे।

✻ ✻ ✻

तनसिंहजी अन्तिम समय में गंभीर रूप से बीमार हुए। उस समय नारायणसिंहजी के माता-पिता भी वृद्ध थे, बीमार भी रहते थे। पर उनके मन में कोई असमंजस नहीं था। तनसिंहजी ही उनके गुरु थे, पिता थे, माता थे। इतना ही नहीं उनके भगवान भी थे। जन्मदाता माता-पिता को भी कई बार साथ ले आते। कभी माता-पिता को छोड़ तनसिंहजी की सेवा की। माता-पिता व परिवार को कोई शिकायत नहीं और स्वयं को भी कोई शिकायत नहीं थी। पू. तनसिंहजी उनसे सदैव संतुष्ट थे; क्योंकि नारायणसिंहजी उनके भ्राता थे, सखा थे, भक्त थे और सेवक भी थे। अद्‌भुत संगम। एक आदर्श जीवन जीकर अमर हो गए। संसार में ऐसे अनुचर करोड़ों में कोई एक ही होते हैं। इसीलिए पूज्य तनसिंहजी ने एक गीत में कहा, -

चाहे एक ही जले, पूरे स्नेह से जले, ऐसे दीप चाहिए।
जिसकी कांपे नहीं लौ, कहीं दुनिया में हो ऐसी ज्योत चाहिए।।

●

पृष्ठ 4 का शेष

समाचार संक्षेप

जयंतियाँ :

ज्येष्ठ शुक्ला तृतीया को महाराणा प्रताप की जयन्ती अनेक स्थानों पर मनाई गई। ईस्वी सन् 1540 की 9 मई को उनका जन्म हुआ था अत: 9 मई को भी अनेक जगह प्रताप जयन्ती के आयोजन रखे गये। इस वर्ष ज्येष्ठ शुक्ला तृतीया 2 जून को थी अत: 2 जून को जगह-जगह बड़े कार्यक्रमों के रूप में आयोजन सम्पन्न हुए। जयपुर में महाराणा प्रताप जयन्ती सप्ताह मनाया गया और पूरे सप्ताह तक भिन्न-भिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से महाराणा प्रताप का स्मरण किया गया।

सम्राट पृथ्वीराज चौहान की जयन्ती भी देश भर में अनेक स्थानों पर मनाई गई। पृथ्वीराज चौहान जन्मोत्सव पखवाड़े की पूर्णाहुति ब्यावर में सम्पन हुई। जून माह में ही वीर वर चांदा जी की जयन्ती का कार्यक्रम भी सम्पन्न हुआ।

●

गतांक से आगे

पृथ्वीराज चौहान (तृतीय)

– विरेन्द्रसिंह मांडण (किनसरिया)

चौहानों के यश स्तम्भ और पृथ्वीराज का सामाजिक परकोटा, भाग–2

विग्रहराज चौहान चतुर्थ (1151–1164 ई.) :

ये अर्णोराज चौहान और उनकी पहली पत्नी (मारोठ की जोहिया) सुधवा के छोटे पुत्र थे व इनका जन्म 1135 ई. के निकट हुआ। विग्रहराज ने पितृहन्ता जग्गदेव को मारकर पिता के वध का प्रतिशोध लिया। पर यह इनका उपयुक्त परिचय नहीं। विग्रहराज के प्रभुत्व और बहुगुणी व्यक्तित्व के साक्ष्य हमें ग्रन्थ व शिलालेख दोनों में मिल जाते हैं। विग्रहराज द्वारा लिखे ललितविग्रहराज/हरकेलि नाटक में वर्णन है कि उन्होंने बब्बेर गाँव के उत्तर तक पहुँची एक आक्रमणकारी मुस्लिम सेना को परास्त किया तब ऐसी सेना भारत भेजने वाला गजनवी सुल्तान खुसरो शाह के अतिरिक्त कोई नहीं हो सकता। बब्बेर कहाँ है इसके सटीक भौगोलिक परिचय पर मतान्तर के कारण विस्तार में नहीं जाएँगे। जैन ग्रन्थों[1] में वर्णित भूगोल से युद्ध क्षेत्र का मोटा अनुमान हाँसी के आसपास का लगता है।

विग्रहराज की मुस्लिम सेनाओं पर यह एकमात्र विजय नहीं थी। ऐसी कई जीतों से उन्होंने अधिकांश आर्यावर्त (परिभाषा परिवर्तनशील रही हैं) को म्लेच्छों से मुक्त करा पुन: आर्यभूमि बना दिया।[2] इस संघर्ष का संकेत 1155–60 ई. के अंतराल में मिले कई गोवर्धन शिलालेख भी करते हैं। स्तम्भ लेख के आधार पर राज्य का विस्तार विंध्य से हिमालय तक बताया गया है, जिसमें थोड़ी अतिशयोक्ति तो दिखती है पर पूरा गलत भी नहीं। बाकी बचे क्षेत्रों में मुख्य रूप से पंजाब है। विग्रहराज ने अनेकों पर्वतीय दुर्गों पर अधिकार किया था।[3] ये पर्वत हस्तिनापुर से उत्तर पूर्व में शिवालिक शृंखला के होना युक्तिसंगत है, क्योंकि विग्रहराज चौहान का एक प्रसिद्ध अभिलेख शिवालिक क्षेत्र के गाँव टोपरा–खुर्द में ही मिला जो कि बाद में दिल्ली लाया गया और अब दिल्ली–शिवालिक स्तम्भलेख कहलाता है।

विग्रहराज का देसलदेवी नामक राजकुमारी से प्रेम विवाह हुआ था। ये इन्द्रपुर के शासक वसंतपाल की पुत्री थी। हरकेलि नाटक में इन्द्रपुर को टक्क देश (केन्द्रीय पंजाब) के निकट बताये जाने से इतिहासकारों ने इन्द्रपुर को इंद्रप्रस्थ (दिल्ली) ही माना है। बिजोलिया शिलालेख इस शासक को वस्तुपाल कहता है[4] और 14वीं शताब्दी के वसंतविलास में भी ऐसा ही प्रयोग हुआ है। ढीली वंशावली और द्रव्यपरीक्षा में दिल्ली के तत्कालीन शासक का नाम मदनपाल तोमर बताया गया है। मदन व वसंत समानार्थी होने से विद्वानों का मत है कि इन्द्रपुर/इंद्रप्रस्थ के वसंतपाल और दिल्ली के मदनपाल एक ही थे अतएव देसलदेवी तोमर वंश की थीं। विग्रहराज ने मदनपाल तोमर को एक युद्ध में परास्त किया था।[5] उसके बाद हुई विग्रहराज–मदनपाल मैत्री और देसलदेवी से विवाह की पृष्ठभूमि भी रोचक है। एक ओर तो चौहानों पर दक्षिण से सोलंकियों का दबाव था, तो तोमर भी पूर्व में गहड़वालों से उलझ चुके थे। इसके अलावा इस्लामी आक्रमणों का दंश तो स्वाभाविक है कि सर्वप्रथम चौहान–तोमर राज्यों पर ही पड़ता था।

ललितविग्रहराज/हरकेलि नाटक को 1153 ई. में उकेरा गया है। सो 1153 ई. से कुछ पहले ही विग्रहराज व गजनवी म्लेच्छों के बीच बब्बेर का युद्ध हुआ है। इस्लामी इतिहासकारों ने जैसी उनकी प्रवृति थी, इस पराजय पर मौन धारण कर पूरा प्रकरण गोल कर दिया है। लगभग इसी समय विग्रहराज–देसलदेवी विवाह भी होना चाहिए, जिसकी भूमिका रूप में प्रेम–प्रसंग तो हरकेलि नाटक में वर्णित ही है।

ललितविग्रहराज नाटक में राजा के प्रेम प्रसंग से

(शेष पृष्ठ 14 पर)

गतांक से आगे

संघशक्ति/4 जुलाई/2022

यदुवंशी करौली का इतिहास

– राव शिवराजपालसिंह इनायती

महाराजा प्रताप पाल के निकटतम परिजन हाड़ौती ठिकाने से नरसिंह पाल को राजगद्दी पर लाकर बिठाया गया। राजा नरसिंह पाल उस समय बालिग नहीं थे, इस वजह से 26 अप्रेल, 1849 को लेफ्टिनेंट मॉन्क मेसन को करौली की व्यवस्थाएँ दुरुस्त करने भेजा गया। वहाँ की अराजकता देखकर पॉलिटिकल एजेंट ने कोटा छावनी से एक गारद बुलवाई, जो अपने साथ दो तोपें भी लेकर आई। गारद को शिकारगंज भवन में ठहराया गया। अंग्रेज अधिकारी के नेतृत्व में सैनिक टुकड़ी की सख्ती से राजधानी और रियासत में कानून व्यवस्था में सुधार होने लगा। इसी समय एक काबिल व्यक्ति सैफुल्लाह खाँ को डिप्टी मजिस्ट्रेट नियुक्त किया गया। महाराजा प्रताप पाल के समय हुए आंतरिक झगड़ों में राजकोष की बर्बादी हुई और उल्टा कर्ज और चढ़ गया था, जिसे लेफ्टिनेंट मॉन्क मेसन और सैफुल्लाह खाँ ने कुछ ही समय में चुकता कर दिया।

इस दौरान एक बार सिपाहियों ने भी मनमानी की और राजधानी में मुस्लिम समुदाय को निशाना बनाया, लेकिन डिप्टी मजिस्ट्रेट और पॉलिटिकल एजेंट ने सख्ती से उसका दमन कर दोषी सिपाहियों को सजा दी। जैसे ही रियासत में जिन्दगी और व्यवस्था कुछ शान्ति के साथ पटरी पर लौटने लगी उसी समय नरसिंह पाल का अति अल्प काल के राज के बाद नाबालिगी में ही बीमारी से 10 जुलाई, 1852 को स्वर्गवास हो गया और फिर से वारिस का बखेड़ा खड़ा हो गया। फिर वही दो पक्षों में लोग बंट गए, एक पक्ष के अनुसार मृत्यु से पहले नरसिंह पाल ने भरतपाल को अगला राजा बनाने के लिये कहा था, जबकि मुख्य जागीरदारों और अन्य लोगों के अनुसार पुरानी चली आ रही परिपाटी अनुसार हाड़ोती के राव को अथवा उनके बेटे को गोद लेने की परम्परा के अनुसार मदन पाल का हक बनता था। दोनों पक्षों में किसी तरह की सहमति नहीं बन पा रही थी, राज काज पूर्ववत डिप्टी मजिस्ट्रेट सैफुल्लाह खां ही संभाल रहा था।

अंग्रेज अधिकारी भी इस समय पर दो पक्षों में बंट गए, एक पक्ष कर्नल लॉ ने सिफारिश की कि स्वर्गीय नरसिंहपाल की इच्छानुसार भरतपाल को ब्रिटिश सरकार करौली के राजा की मान्यता दे। वहीं दूसरे पक्ष के अनुसार 24 जून, 1849 को ब्रिटिश सरकार के कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स से जारी एक आदेश के तहत गोद नशीनी को मान्यता नहीं देकर करौली को ब्रिटिश सरकार में मिला लिया जाए। गवर्नर जनरल डलहोजी ने 30 अगस्त, 1852 को पत्र में कर्नल लॉ की सिफारिश के बारे में स्थिति स्पष्ट करते हुए लिखा कि हिन्दू परम्परा के अनुसार किसी व्यक्ति के लाऔलाद गुजर जाने पर उसके खून के रिश्ते में नजदीकी परिवार से गोद लेने की परम्परा है, और गोद लिए हुए व्यक्ति को वही सब अधिकार मिल जाते हैं, जो मृत व्यक्ति (जिसकी गोद वह आया है) भोग रहा था।

1848 ईस्वी के सतारा राज में गोद लिए व्यक्ति को राजा के रूप में मान्यता नहीं देने के मामले का उदाहरण देते हुए डलहौजी ने लिखा कि ब्रिटिश सरकार को अपने राज्य को बढ़ाने के ऐसे अवसर नहीं छोड़ने चाहिए और करौली को रजवाड़ा के रूप में मान्यता नहीं देकर उसे शामिल ब्रिटिश राज कर लेना चाहिए। डलहौजी का सिद्धान्त था कि गोद लिए व्यक्ति को संपत्ति आदि के अधिकार हस्तांतरित करने में कोई आपत्ति नहीं है चूंकि यह हिन्दू रीति-रिवाज के अनुसार है, लेकिन उसे राजा के रूप में मान्यता नहीं दी जानी चाहिए। इस कानून को डॉक्टराइन ऑफ लेप्स के नाम से जाना जाता है। डलहौजी ने आगे लिखा कि हम गोद लिए जाने को तो अवैधानिक नहीं घोषित कर सकते क्योंकि 1817 ईस्वी की संधि के बाद ब्रिटिश सरकार दो बार गोद लिए जाने को स्वीकृति दे

चुकी है, लेकिन इस बार मामला दूसरा है जहाँ भरतपाल कई पीढ़ी दूर के परिवार से आता है। यदि सरकार करौली को शामिल राज ब्रिटिशराज करती है तो कानून व्यवस्था संभालने के लिए मॉन्क मेसन कोटा छावनी से भेजी गई गारद के साथ वहाँ पहले से मौजूद है।

गवर्नर जनरल डलहौजी के पत्र पर कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स में सर एफ क्यूरी बैरिस्टर ने गोद लिए जाने के पक्ष में बहुत सारे अन्य तथ्यों के साथ एक मजबूत दलील देते हुए लिखा कि 1817 में हुई संधि के अंग्रेजी अनुवाद के अनुसार संधि ब्रिटिश सरकार और करौली के राजा और उसके वारिसान के मध्य हुई है। संधि के मूल फारसी लेख, जिस पर दोनों पक्षों के दस्तखत और सील लगे हुए हैं में ''दोनों सरकारों के बीच पीढ़ी दर पीढ़ी'' शब्द काम में लिए गए हैं। आगे मिस्टर क्यूरी स्पष्ट लिखते हैं कि पूरी संधि पत्र में राजा हरबख्श पाल के नाम का उल्लेख एक बार भी नहीं है, इसका मतलब ब्रिटिश सरकार की संधि व्यक्ति विशेष के साथ नहीं होकर करौली राज के साथ हुई है, और इस संधि के अनुसार ब्रिटिश सरकार करौली को जब्त राज नहीं कर सकती। इसी संधि के तहत ब्रिटिश सरकार ने हरबख्श पाल के बाद दो बार गोद नशीनी को मान्यता भी दी है। यदि अब मान्यता नहीं देकर राज जब्त किया जाता है तो ना केवल राजपुताने में बल्कि पूरे भारत के राजाओं में गलत संदेश जाएगा और ब्रिटिश सरकार की खिलाफत बढेगी। लेकिन सर जे लुईस ने इसके विपरीत मत प्रतिपादित करते हुए लिखा कि गवर्नर जनरल के प्रस्ताव को मानकर गोद नशीनी को मान्यता नहीं दी जानी चाहिए।

अंत में इस सारी खतो किताबत के बाद कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स ने अपने पत्र दिनांक 26 जनवरी, 1853 में गवर्नर जनरल को आदेशित किया कि सतारा राज्य का केस अलग था, वह पुरानी रियासत नहीं थी और उसके गठन में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का योगदान था। करौली राजपूताने की सबसे पुरानी रियासतों में से एक है, और संधि के अनुसार यह अधीन रियासत नहीं होकर संरक्षित मित्र राज्य है। इसलिए करौली में गोद नशीनी को मान्यता दी जाए और जब तक राजा बालिग हो, राज्य का इंतजाम पूर्वानुसार गवर्नर जनरल के एजेंट के अधीन ही चलता रहे। जब तक कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स में से यह फैसला आया तब तक करौली में एक नया झगड़ा शुरू हो गया। हाड़ौती के राव मदनपाल के पक्ष में प्रमुख ठिकाने दार और अन्य छोटे जागीरदार लामबंद हो गए, उनको हरबख्श पाल की और प्रताप पाल की रानी का भी समर्थन प्राप्त था। गवर्नर जनरल के इस विवाद के बारे में लिखने पर वहाँ से आदेश आया कि भरतपाल और मदनपाल के दावों के बारे में पूरी तहकीकात की जाए और यदि कोई संशय हो तो विद्वान पंडितों तथा राजपुताने की अन्य रियासतों के प्रमुखों से भी सलाह ली जाए।

राजपुताने के AGG Lt. Col. हेनरी लॉरेंस ने आबू कैंप में अपने 17 नवम्बर, 1853 के पत्र में उसके द्वारा की गई पूरी जाँच के बारे में विस्तार से लिखा है। उसमें वह लिखता है कि राजपुताने की अन्य रियासतों के प्रमुखों से सलाह ली, इससे मिलते-जुलते मामलों का अध्ययन किया, जिसमें गोद लिए जाने के मामले जैसे 1819 में जयपुर का, 1839 में करौली का और 1846 में डूंगरपुर के मामले प्रमुख हैं। इसके साथ ही एम. मेसन द्वारा लिखे गए पत्रों का भी अवलोकन किया। लॉरेंस लिखते हैं कि करौली में पदस्थापित पोलिटिकल एजेंट महाराजा की बीमारी के दौरान कई दफा उनसे मिलने गया, लेकिन महाराजा ने उससे गोद लिए जाने के बारे में कोई चर्चा नहीं की। जिस दिन महाराजा की मृत्यु हुई उस दिन भी मेसन उनसे मिलने गया लेकिन महाराजा बोलने की स्थिति में ही नहीं थे। मेसन का कहना था कि उसी महल में रहते हुए भी हरबख्श पाल और प्रताप पाल की रानियों को यह नहीं मालूम चला कि राजा किसी को गोद ले रहा है। जबकि हिन्दू परम्परा के अनुसार गोद लिए जाने की सार्वजनिक समारोह में घोषणा होनी चाहिए, वहाँ भावी

महाराजा को सब द्वारा नजर नछरावल होनी चाहिए, पंडित द्वारा धार्मिक परम्पराएँ निभानी चाहिए, जबकि इस मामले में ऐसा कुछ भी नहीं हुआ, यहाँ तक कि स्वयं भरत पाल भी वहाँ उपस्थित नहीं था। कहा गया कि जब राजा ने भरतपाल को गोद लिया तब देसी वैद्य के अलावा सात और लोग उपस्थित थे जिनमें नरसिंह पाल की स्वयं की जैविक माता भी उपस्थित थी। यहाँ यह द्रष्टव्य है कि गोद लिए जाने के बाद जैविक माता से संबंध नहीं रह जाता बल्कि मृत राजा की रानी ही उसकी माता मानी जाती है। मेसन के अनुसार उन सात व्यक्तियों में से भी सिवा एक मुस्लिम के शेष लोग विश्वास योग्य नहीं हैं। प्रताप पाल की रानी ने भी यही कहा कि नरसिंह पाल की मृत्यु वाले दिन भी वह उनको देखने गई थी, लेकिन वहाँ गोद लिए जाने जैसा कोई आयोजन के चिह्न नहीं थे, ना ही कोई चर्चा थी। भरत पाल के विरुद्ध सन् 1848 में भेजी गई वंशावली में भी भरत पाल का कोई उल्लेख ही नहीं है, वैसे भी उसके पूर्वज आठ पीढ़ी पहले से एक अलग शाखा के रूप में थे, जबकि मदनपाल वंश वृक्ष के अनुसार सबसे नजदीकी परिजन थे। प्रमुख ठिकानेदार, अन्य द्वितीय श्रेणी के ठिकानेदार, प्रमुख अधिकारीगण सभी मदनपाल के ही पक्ष में थे।

(क्रमशः)

पृष्ठ 11 का शेष

पृथ्वीराज चौहान (तृतीय)

और उनकी मृत्यु के समय ज्येष्ठ पुत्र के अवयस्क होने से यह पुष्टि हो जाती है कि लगभग 35 वर्ष की आयु में इस चौहान नरेश का देहावसान हुआ। पर मृत्यु से कुछ समय पूर्व उस प्रसिद्ध शिवालिक स्तम्भलेख में विग्रहराज यह कह गए कि अब बाकी का आर्यावर्त जीतना उनके वंशजों का काम है।

आयु के चौथे दशक में आते ही राजा द्वारा उत्तरदायित्व हस्तांतरण की मनोदशा दिखाना हमें सोचने पर विवश कर देता है।

– या तो चौहान नरेश बहुत अस्वस्थ हो चले थे और उन्हें अपने अल्पायु होने का आभास था।

– अथवा गजनवियों के अब भी शक्तिशाली होने व मुस्लिमों से भरे पंजाब में सदियों से बैठे होने के कारण पंजाब की घर वापसी अब एक बड़ी परियोजना सी आंकी गई थी, जिसे मूर्त रूप देना समय लेनेवाला और बहुत कठिन कार्य था।

विग्रहराज का बहुगुणी व्यक्तित्व, न केवल युद्ध के क्षात्रकर्म में चमकता है अपितु कला, विभिन्न धर्मों-पंथों को किये दान-पुण्य और सभ्यता के बचाव को किये विचारशील प्रयास भी दृष्टिगोचर होते हैं। सरस्वती कंठाभरण विद्यापीठ व मंदिर की स्थापना इनके शासनकाल में हुई। तुर्कों के विध्वंस की भेंट चढ़ने के बाद मुस्लिम काल में यहाँ जो ढांचा बनाया गया वही आगे चलकर अढ़ाई दिन का झोंपड़ा कहलाया। विग्रहराज चौहान समाज के लिए पृथ्वीराज से अधिक नहीं तो उतने ही प्रेरणादायी और अनुकरणीय हैं।

पृथ्वीभट या पृथ्वीराज चौहान द्वितीय : (शासन 1167–1169 ई.)

पृथ्वीभट को उत्तर पश्चिम से गजनवी संकट का कितना भान था और उसके लिए दो-तीन वर्षों के अपने छोटे से शासनकाल में उन्होंने क्या प्रबंध किये ये तो पाठकों ने पिछले अंकों में पढ़ा ही होगा विग्रहराज के पंचतत्व में लीन होने के बाद उत्तर-पश्चिम से संकट की तलवार लटकने पर पृथ्वीभट को जितनी तैयारियाँ करनी पड़ी, वो फिर सिद्ध कर देता है कि विग्रहराज का प्रस्थान चौहानों के लिए कितना बड़ा शून्य छोड़ कर गया।

1. खरतरगच्छ वृहद गुर्वावली, पृ. 23, 2. दिल्ली-शिवालिक स्तम्भ लेख 1164 ई., इंडियन एंटीक्वेरी खंड-19, पृष्ठ 218-20, 3. पृथ्वीराजविजय सर्ग-6, श्लोक-64, 4. बिजोलिया शिलालेख, इंडियन एंटीक्वेरी खंड-26, पृष्ठ 102-120, 5. अलंकार महोदधि, 1232 ई., ढीली वंशावली।

(क्रमशः)

विचार सरिता

(द्विसप्रति लहरी)

– विचारक

संसार का अर्थ हम इस बाहरी भौतिक जगत से लेते हैं, जो कि हमें जाग्रत अवस्था में बड़ा लुभावना व आकर्षण का केन्द्र लगता है। सुख का स्रोत भौतिक सम्पदा को मानकर हम उनका संग्रहण, संवर्द्धन व रक्षा में पूरा जीवन झौंक देते हैं। उसमें कहीं कोई बाधक बनता है तो उससे द्वेष व सहायक बनता है तो उससे हमारा रागात्मक भाव का होना स्वाभाविक है। यह बाहरी भौतिक जगत तो मात्र एक खुली आँख का स्वप्न है। जिसका स्वप्न अवस्था व सुषोप्ति में अभाव प्रमाणित है वह सत्य कैसे हो सकता है। असल में हकीकत तो यह है कि जिसे हम संसार कहते हैं वह तो हमने अपने विचारों, वासनाओं, कामनाओं के कारण भीतर बसा रखा है। उन्हीं कामनाओं और वासनाओं के कारण जो राग, द्वेष, ईर्ष्या, घृणा, निन्दा, हिंसा, अहिंसा, तृष्णा, लोभ, मोह आदि का संसार निर्मित किया है वह आधारहीन है। इसका कोई ठोस शाश्वत आधार नहीं है। यह सब भ्रमपूर्ण है, माया है, दुराग्रहयुक्त है।

हमारे झूठे आग्रहों से ही संसार में सुख–दुःख, हर्ष–विषाद का अनुभव होता है। यदि सारे दुराग्रह एवं पूर्वाग्रह शान्त हो जायें तो संसार में भी शान्ति का अनुभव किया जा सकता है। हमारे दुराग्रह के कारण ही संसार अनर्थ का मूल बन जाता है। इसका मूलोच्छेदन ज्ञानी ही अपने आत्मज्ञान के अनुभव से करते हैं। ज्ञानी ही इसे अनर्थ का मूल समझकर इससे सम्बन्ध विच्छेद करके आत्मा से अपना सम्बन्ध जोड़कर सुख एवं शान्ति का अनुभव करता है, जबकि अज्ञानी इस ज्ञान से अपरिचित रहने से वह इस आधारहीन एवं अनर्थमूलक संसार का ही पोषण करता है। अज्ञानी की दृष्टि में विषयानंद ही वास्तविक सुख है। किन्तु जब उसे कोई आत्मानन्दी ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु मिल जाता है और उसे आत्मानन्द की अनुभूति करा देता है तो वह विषयानन्द को हेय समझकर त्याग देता है।

अज्ञानी पदार्थ को ही देखता है उसके आधारभूत आत्मा को नहीं देख सकता। इन्द्रियाँ केवल स्थूल को ही देख पाती हैं, सूक्ष्म उनकी पकड़ में नहीं आता। सामान्यजन केवल पदार्थ (दृश्य) को देख पाते हैं किन्तु वैज्ञानिक उसके भीतर की ऊर्जा को भी देख लेते हैं। अज्ञानी पदार्थ को सत्य मानता है किन्तु वैज्ञानिक कहता है पदार्थ तो भ्रममात्र है, केवल ऊर्जा का ही अस्तित्व है। आत्मा ही द्रष्टा है। आँख तो देखने का उपकरण मात्र है। न मन देखता है न मस्तिष्क। द्रष्टा केवल आत्मा है। इसलिए ज्ञानी पुरुष दृश्य पदार्थों को नहीं देखते हैं बल्कि उस अविनाशी आत्मा को ही देखते हैं जिससे यह सारा जगत् दृश्यमान हो रहा है।

जिसकी दृष्टि में एक परमात्मा के अतिरिक्त अन्य कुछ है ही नहीं, ऐसी दृष्टि जिस ज्ञानी पुरुष की बन जाती है उसकी दृष्टि में यह दृश्य प्रपञ्च ब्रह्मविलास है। जिस प्रकार पाषाण से निर्मित अश्वारूढ़ पुरुष की मूर्ति में दिखने को तो अश्व के नेत्र, कान, नाक, पाँव, उदर व पूंछ आकृति रूप में अलग–अलग हैं। ऐसे अश्वारूढ़ उस पुरुष के हाथ में तलवार, भाला या अन्य आयुद्ध की आकृति उसकी वीरता के प्रतीक हैं परन्तु विचार दृष्टि से, ज्ञान दृष्टि से जब देखते हैं तो वहाँ न अलग से कोई अश्व है और न उस पर सवार कोई देवपुरुष ही है। उस सारी प्रतिमा में पाषाण के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। उसी प्रतिमा के ऊपर अंकित चाँद और सूर्य की उकेरी हुई आकृति से कभी भी वहाँ के अंधेरे का छेदन नहीं होता क्योंकि उनमें कोई प्रकाश नहीं है अपितु केवल और केवल वहाँ पाषाण ही है। इस प्रकार ज्ञानी और अज्ञानी की दृष्टि में यही भेद

(शेष पृष्ठ 18 पर)

संघशक्ति/4 जुलाई/2022

छोड़ो चिन्ता-दुश्चिन्ता को

- स्वामी जगदात्मानन्द

संसार कराह रहा है! :

भारत की वर्तमान दुरवस्था के लिए लोकतांत्रिक शासन-प्रणाली भी जिम्मेदार रही है। लोकतंत्र कोई बेदाग प्रणाली नहीं है। आज का हर शिक्षित व्यक्ति यह जान गया है कि नागरिक जीवन के यथेष्ट प्रशिक्षण एवं तैयारी के अभाव में भारत का लोकतंत्र विकृत होकर अपना घृणित रूप दिखा रहा है। 'एक व्यक्ति एक वोट'- के नारे में मानव का समता के सिद्धान्त में विश्वास व्यक्त होता है। परन्तु यह व्यवहार में कैसे आए? कुछ पुराने चिन्तकों ने दिखाया है कि 'स्वतंत्रता, समानता और बन्धुत्व'- फ्रांसीसी क्रान्ति का यह नारा व्यवहार में किस तरह विकृत हो गया है। अनेक लोगों के लिए स्वतंत्रता का अर्थ है- 'यथेच्छाचार की स्वाधीनता'; समानता का अर्थ है-'मुझसे अच्छा कोई नहीं' और बन्धुत्व का तात्पर्य है-'जरूरत पड़ने पर आपकी वस्तु मेरी है।'

आर्थिक समानता और कानूनी, समानता तो लोगों पर बलपूर्वक लागू की जा सकती है, परन्तु बुद्धि, मनोबल, समझदारी, विचारों की मौलिकता, निर्णय-शक्ति और नैतिक सत्यनिष्ठा के मामले में भी क्या लोगों के बीच सच्ची समानता है? स्पष्ट शब्दों में कहें, तो इस संसार में स्वयं को सच्चे सज्जन के रूप में प्रस्तुत करने वाले अधिकांश लोग अपने अशान्त मन को संयमित कर पाने में असमर्थ है। इन्द्रिय सुख-भोगों में आसक्त निकृष्ट लोग हर प्रकार के सुख को अपनी पाशविक संस्कृति के स्तर पर उतार लाते हैं। मीडिया के लोग, सिने-निर्माता, लेखक, नाटक तथा फिल्मों के अभिनेता, होटल-मालिक आदि सत्य, न्याय एवं शिष्टाचार के सभी सिद्धान्तों को ताक पर रखकर लोगों से धन कमाने का प्रयास करते हैं। सत्ता-लोलुप राजनेता वोट पाने के लिये इन लोगों की ताल पर नाचते रहते हैं। सत्तासीन और विपक्षी दल अपने अनुसार न चलने वाले लोगों के खिलाफ हर प्रकार के घटिया दुष्प्रचार करते हैं। राजनीतिज्ञ एक-दूसरे पर ही कीचड़ उछालते हुए, स्वयं सद्भाव एवं सद्विचार से रहित होकर, लोगों की सद्भावना को नष्ट करते हैं। इसी कारण व्यक्ति के चरित्र-गठन और समग्र समाज के कल्याण का विचार रखनेवाले उन नि:स्वार्थ और महान लोगों की अपील अरण्य-रोदन मात्र बनकर रह जाती है।

गीता में काम, क्रोध और लोभ को नरक के द्वार बताया गया है। अपने धर्म-विरोधी विचारों के साथ आज का भौतिकवादी दर्शन इन दुष्प्रवृत्तियों को हवा देता रहा है। आइंस्टीन के ये शब्द स्मरणीय है-'विज्ञान प्लूटोनियम को तो शुद्ध कर सकता है, पर मानव-हृदय की दुष्टता को नहीं।'

श्रद्धा या विश्वास ही दवा है :

11वीं शताब्दी के शुरू में विज्ञान का झंझावत भारत की ओर बहने लगा। जैसे पश्चिम के वैज्ञानिक-प्रवृत्ति-सम्पन्न लोगों ने अपने धार्मिक नेताओं की आलोचना की थी, ठीक वैसे ही इस देश के तथाकथित शिक्षित लोग भी उन्हीं के नारों को दुहरा रहे थे। वस्तुत: भारतीय धर्म कभी भी सच्चे वैज्ञानिक चिन्तन का विरोधी नहीं रहा। धर्म की सीमाओं के भीतर रहकर मर्यादित सुखों की हमारे धर्मशास्त्रों ने कभी निन्दा नहीं की। यहाँ सत्य के शोध तथा उसकी अनूभुति की विधि अत्यन्त वैज्ञानिक ढंग से विकसित हो चुकी थी। हमारे ऋषि-मुनि आत्मा, ईश्वर और ब्रह्माण्ड के सत्यों तथा मनुष्य के हृदय के अन्तर्जगत की खोज करके इनमें परस्पर सम्बन्ध का आविष्कार कर चुके थे। स्वामी विवेकानन्द ने कहा था कि वेदान्त में पाए जाने वाले सार्वभौमिक सत्य आधुनिक विज्ञान की चुनौतियों का सामना कर सकते हैं और मानवता को प्रगति और शान्ति के पथ पर आगे बढ़ा सकते हैं। उन्होंने एक व्यावहारिक जीवन-दर्शन का उपदेश दिया, जिसका किसी खास धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं था। यह दर्शन व्यक्तित्व का बहुमुखी विकास तथा

समाज और राष्ट्र का हित साधित कर सकता है। उनकी मान्यताएँ हैं- समग्र ब्रह्माण्ड की आध्यात्मिक एकता, सर्वधर्म-समभाव, आत्मा की दिव्यता तथा मानव-मात्र की सेवा द्वारा ईश्वर की सेवा। वे भारतीय स्वाधीनता के पूर्वकाल के एक महान देशभक्त और आध्यात्मिक आचार्य थे। उन्होंने देश से गरीबी उन्मूलन और देश सेवा में आत्मोत्सर्ग हेतु युवाओं में प्रेरणा का संचार किया। प्रख्यात इतिहासकार डॉ. रमेशचन्द्र मजूमदार अपनी पुस्तक 'भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के तीन रूप' में लिखते हैं-'अब यह एक सुविदित तथ्य है कि बंगाल के सैकड़ों युवा क्रान्तिकारी स्वामी विवेकानन्द के संदेश से प्रेरित थे और उन्होंने अपने अधरों पर 'वन्देमातरम्' और हृदय में विवेकानन्द की शिक्षाओं को धारण कर दु:ख-कष्टों और मृत्यु का सहर्ष आलिंगन किया।' किसी को भी यह नहीं भूलना चाहिए कि विवेकानन्द को इस कठिन कार्य में अपने अथाह ज्ञान से ही सहायता मिली थी। आध्यात्मिकता उस ज्ञान की आधारशिला थी। परवर्ती दिनों में, स्वयं गाँधीजी आध्यात्मिकता पर आधारित एकीकृत जीवन के एक उदाहरण बन गए और उन्होंने देश को नि:स्वार्थ सेवा का संदेश दिया।

पाश्चात्य वैज्ञानिक विकास से मोहित और पाश्चात्य आदर्श का अनुसरण करने के इच्छुक लोगों को इस शताब्दी के प्रारम्भ में स्वामी विवेकानन्द ने निम्नलिखित चेतावनी दी थी -

'यह सत्य है कि सामाजिक और आर्थिक तौर पर पिछड़े लोगों को भौतिक सुख-भोग हेतु कुछ हद तक अवसरों तथा अधिकारों की जरूरत है। थोड़ा सुखमय जीवन बिताने के बाद व्यक्ति में नि:स्वार्थता का सद्गुण स्वाभाविक रूप से ही आ जाता है। सम्भवत: यहाँ हम पाश्चात्य लोगों से कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। परन्तु हमें बहुत सतर्क रहना होगा। हमें दु:ख के साथ स्वीकार करना पड़ता है कि पाश्चायत्य आदर्शों को समझ लेने का दावा करने वाले अधिकांश लोगों ने हमारे समाज को लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक पहुँचायी है। वैज्ञानिक विचार, चीजों के बेहतर उपयोग करने का तरीका और सामूहिक रूप से कार्य करने के क्षेत्र में हम उन लोगों से सीख सकते हैं। परन्तु यदि कोई कहे कि खाना-पीना और नाच-गान अर्थात् इन्द्रियों का सुख-भोग ही जीवन का एकमात्र लक्ष्य है, तो वह मिथ्यावादी है। पाश्चात्य प्रौद्योगिकी और पाश्चात्य सभ्यता, चकाचौंध-भरी तथा प्रभावकारी हो सकती है, परन्तु वैसा जीवन तुच्छ और नि:सार है। अपने आध्यात्मिक लक्ष्य को कदापि मत छोड़ो। पृथ्वी पर एकमात्र यही चिरस्थायी वस्तु है। इसका अर्थ यह नहीं कि राजनैतिक और सामाजिक मुद्दों जैसे अन्य मामलों की कोई जरूरत नहीं। परन्तु उन्हीं पर अत्यधिक ध्यान दिया जाना वांछनीय नहीं है। उन्हें अपनी चिन्ता का मूल-बिन्दु नहीं बनाना चाहिए। भारतवासियों के लिये धर्म ही सब कुछ है। यदि वह चला गया, तो हमारा देश पूरी तौर से नष्ट हो जाएगा। आप हर व्यक्ति को कुबेर का खजाना दे सकते हैं, चाहे जितने सामाजिक सुधार कर सकते हैं, परन्तु आध्यात्मिक जीवन के बिना भारत जीवित नहीं रहेगा।''

यह सोचना गलत है कि भारत के धर्माचार्य ही धर्म या आध्यात्मिक जीवन के आदर्श की घोषणा करते हैं। समग्र विश्व के इतिहास का विश्लेषण करने वाले अर्नाल्ड टॉयन्बी भी कहते हैं कि 'राजनीतिक और आर्थिक मामलों पर अत्यधिक बल देना और जीवन के अन्य सभी आदर्शों को उनके अधीन रखना-इनके कारण ही सभी सभ्यताएँ पतनोन्मुख हुईं। जो भाव धार्मिक कट्टरता पर एक आक्रमण के रूप में शुरू हुआ था, वह अब आध्यात्मिक अग्नि को ही बुझा चुका है। यह पतन सत्रहवीं शताब्दी में प्रारम्भ हुआ, बीसवीं शताब्दी में इसने अपनी जड़ें जमा लीं और अब यह विशाल पाश्चात्य समुदाय के सभी हिस्सों में फैल चुका है। धीरे-धीरे वे लोग इस खतरे के प्रति सजग हो रहे हैं। यह खतरा न केवल पश्चिमी समाज के आध्यात्मिक स्वास्थ्य के लिए, अपितु इसके भौतिक अस्तित्व के लिए भी घातक है। वस्तुत: लोग अनुभव कर रहे हैं कि यह धर्म विरोधी रुख किसी

भयानक राजनीतिक या आर्थिक उथल-पुथल से भी अधिक घातक हो सकता है।'

वैज्ञानिकों का समर्थन :

वैज्ञानिक भी अब यह स्वीकार करने लगे हैं कि नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों के अभाव में समाज का विघटन अवश्यम्भावी है।

महान विचारक बर्ट्रेंड रसेल ने कहा था, 'विज्ञान की प्रत्येक खोज मानवमात्र के लिए एक दुर्भाग्य सिद्ध होती जा रही है। यदि प्रौद्योगिक कुशलता के साथ विवेक का भी विकास न हो, तो यह हमारे दु:ख का कारण सिद्ध होगा।'

अलेक्सिस कैरल का कहना है, 'आधुनिक सभ्यता मानवता को रास नहीं आती। यह मानव-जाति की सच्ची प्रकृति को जाने बिना बनाई गयी एक इमारत के समान है। इसका कोई निश्चित लक्ष्य या प्रयोजन नहीं है। यह मानवता के सर्वांगीण विकास को अपना लक्ष्य नहीं बनाती है। वैज्ञानिक प्रयोग हमें कहाँ ले जा रहे हैं-यह जानने का प्रयास किए बिना ही उनमें लगे रहने का क्या मतलब है? विज्ञान के असीमित खजाने से जो कुछ हम चुनते हैं, वह मानवता की उन्नति हेतु हमारी चिन्ता के अनुसार नहीं होता। हमें जो कुछ अच्छा और सुविधाजनक लगा, हमने उसी का विकास किया। हमने कभी पल भर भी ठहरकर यह नहीं सोचा कि इसका मानव-जाति पर क्या प्रभाव होगा। ....मानव-जाति को अत्यधिक अवकाश प्रदान करके वैज्ञानिक सभ्यता ने बड़े दुर्भाग्य को जन्म दिया है। तकनीकी क्रान्ति की कीमत शायद हमें मानसिक दुर्बलता, मनोविकृति और उन्माद के रूप में चुकानी होगी।'

लेकाम 'द'नोई ने कहा था, 'जो सभ्यता पूरी तौर से यंत्रों के विकास तथा प्रौद्योगिक कुशलता पर निर्भर है, उसका विनाश अवश्यम्भावी है। मानव-इतिहास में पहली बार कोरी बुद्धि और नैतिक मूल्यों के बीच यह संघर्ष छिड़ा है कि दोनों में से कौन बचेगा और कौन नष्ट हो जाएगा।'

सोरोकिन का कहना है, 'विज्ञान और प्रायोगिक विज्ञान के फलों का घोर दुरुपयोग हुआ है। अणुबम की सर्वनाशी शक्ति का भय भविष्य के युद्धों पर विराम लगा देगा-यह धारणा उतनी ही मूर्खतापूर्ण है, जितनी कि यह भ्रांति की कोई प्रेत जितना अधिक दुष्प्रवृत्तियों से युक्त होगा, उतना दिव्य होता जाएगा। मनुष्य का आर्थिक विकास मानवता को उसी के अनुरूप नैतिक चरित्र के विकास की ओर ले जाता है-यह धारणा मिथ्या है, यह असन्दिग्ध रूप से काफी पहले ही सिद्ध हो चुका है।' आज के मनोवैज्ञानिक जोर देकर कहते हैं कि मनुष्य के आन्तरिक जीवन, मानसिक सन्तुलन तथा स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए धर्म या धर्म के आदर्श जरूरी हैं।

मनोविकृति के अनेक रोगियों का अध्ययन तथा उपचार करने वाले डॉ. सी.जी. युंग ने कहा था, 'पैंतीस वर्ष की आयु से अधिक के मेरे सभी रोगियों का कोई धार्मिक या आध्यात्मिक दृष्टिकोण नहीं था। किसी प्रकार का धार्मिक दृष्टिकोण रखने पर वे रोगमुक्त हो जाते। इसका एक भी अपवाद नहीं था। दुर्भाग्यवश, फ्रॉयड ने इस बात पर जोर नहीं दिया कि मनुष्य अकेले ही जीवन की समस्याओं और संसार की बुरी शक्तियों का मुकाबला नहीं कर सकता। धर्म का सम्बल सदैव आवश्यक है। यह मनुष्य को निराशा के दलदल से उबार सकता है।

(क्रमश:)

पृष्ठ 15 का शेष

विचार सरिता

है कि अज्ञानी की दृष्टि केवल नाम और रूप पर टिकी रहती है अत: वह जगत के पदार्थों को सत् रूप समझकर उनका संग्रह और उनमें प्रीति करता है। परन्तु ज्ञानी की दृष्टि नाम-रूप को बाध करके उसके अधिष्ठान स्वरूप परमात्मा पर टिकी रहती है।

अत: अज्ञानी के जीवन में भटकाव का कोई अन्त नहीं है और ज्ञानी का जीवन भटकाव रहित है। वह अपने सत् स्वरूप परमात्मा के अतिरिक्त किसी पदार्थ विशेष में सत्यता बुद्धि रखता ही नहीं। इसलिए वह सदैव शान्ति व आनन्द में रमण करता है। ऐसे निजानन्द में लीन ब्रह्मज्ञानी को मेरा हृदय से कोटि-कोटि प्रणाम।

नारायण! नारायण!! नारायण!!!

संघशक्ति/4 जुलाई/2022

महान क्रान्तिकारी राव गोपालसिंह खरवा

– भँवरसिंह मांडासी

पुन: खरवा आगमन :– जोधपुर रहते समय वहाँ के वातावरण का कुं. गोपालसिंह के चरित्र निर्माण पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। किन्तु दो वर्ष से अधिक समय तक वहाँ रहने का नियति ने उन्हें अवसर नहीं दिया। वि.सं. 1952 में उन्हें अचानक खरवा जाना पड़ा व पाँच महीने तक खरवा में रहना पड़ा। इसी अन्तराल में कुँ. गोपालसिंह के आश्रयदाता महाराजा जसवन्तसिंह का वि.सं. 1952 कार्तिक कृष्णा 8 (सन् 1895) को स्वर्गवास हो गया। इसके साथ ही उनका जोधपुर का प्रवास-काल भी समाप्त हुआ एवं वे अजमेर में ही मकान लेकर रहने लगे।

अजमेर के अंग्रेज अधिकारियों के परामर्श से अथवा दबाव से खरवा के दीवान जोशी किशनलाल का खरवा से निष्कासन हो चुका था। राव माधोसिंह ने भी तीर्थ-यात्रा के बहाने खरवा से कुछ काल बाहर रहने का निश्चय कर लिया था। पीछे से खरवा का शासन प्रबन्ध चलाने का अधिकार कुं. गोपालसिंह को दे दिया गया था। ऐसा करने में उनका उद्देश्य ठिकाने में व्याप्त अराजकता को मिटाकर शान्ति-व्यवस्था स्थापित करने का था। सम्भव है ऐसा करने में उन्हें अंग्रेज अधिकारियों से गुप्त परामर्श मिला हो। कुंवर ने अपने तेज मिजाज और उग्र स्वभाव के कारण समाज कंटक कई अपराधियों को कठोर दण्ड दिया। बिना भय अपराधों की समाप्ति नहीं हो सकती थी। परन्तु अंग्रेजों ने अपने देश में प्रचलित नियमों के अनुसार भारतवर्ष में भी बड़े से बड़े जघन्य अपराध के निर्णय और सजा के लिये न्यायालयों की सृष्टि की थी। बड़े से बड़े व्यक्ति को भी कानून हाथ में लेने का अधिकार नहीं था। अत: कुँ. गोपालसिंह का उक्त समाज कंटकों को सजा देने का कार्य कानून विरुद्ध माना गया। राव माधोसिंह के तीर्थाटन से लौटने पर उन घटनाओं को विरोधियों ने बढ़ा-चढ़ाकर उनके सामने पेश किया। सम्भवत: इससे नाराज होकर राव साहब ने खरवा का राज-कार्य पुन: अपने हाथों में ले लिया।

राव गोपालसिंह की गद्दीनशीनी :– अपनी राणी चूण्डावत जी की मृत्यु के पश्चात् राव माधोसिंह अस्वस्थ एवं दुर्बल होते जा रहे थे। वि.सं. 1955 कार्तिक कृष्णा 9 को उनका स्वर्गवास हो गया। पिता की मृत्यु पश्चात गोपालसिंह खरवा के शासनाधिकारी बने।

छपना अकाल :– राव गोपालसिंह की गद्दीनशीनी के पश्चात् आने वाला अगला वर्ष वि.सं. 1956 समस्त राजपूताना के लिए काल बनकर सामने आया। सं. 1956 में राजस्थान के अधिकांश भाग में वर्षा की एक बूंद भी नहीं गिरी। प्रदेश में घोर दुर्भिक्ष पड़ा। अन्न के बिना मनुष्य व चारे के बिना पशु मरने लगे। उक्त दुर्भिक्ष का अत्यधिक प्रकोप बीकानेर, जैसलमेर और जोधपुर राज्यों पर हुआ। परन्तु जयपुर, मेवाड़ और अजमेर प्रान्त भी अकाल की विभीषिका से अछूते नहीं रहे। भूखी ग्रामीण जनता घबराकर घर त्याग कर रोटी की तलाश में बाहर निकल पड़ी। भूख से पीड़ित लोग रास्ते में चलते हुए मरने लगे। समूचे राजपूताना में हाहाकार मच गया। जयपुर, जोधपुर और बीकानेर के महाराजाओं ने भूख से पीड़ित जनता के लिये स्थान-स्थान पर सदाव्रत खोल दिए। मुफ्त खाना बाँटने का प्रबन्ध कराया गया परन्तु उस काल में यातायात एवं संचार के साधनों के अभाव में उक्त सहायता का लाभ अधिकांश अकाल पीड़ित जनता को नहीं मिल सका।

खरवा के राव गोपालसिंह ने दुर्भिक्ष से भूखी जनता को बचाने हेतु परम उदारता एवं दिलेरी से सहायता कार्य शुरू किया। यद्यपि उनकी आय के साधन स्रोत अति सीमित थे। अल्प आय वाले ठिकाने के वे स्वामी थे और खजाना प्राय: खाली था। परन्तु उनका हृदय महान था, वे परम उदार एवं त्याग की मूर्ति थे। भूख से तड़फड़ाती जनता के दु:ख का हृदय विदारक दृश्य वे नहीं देख सके।

उन्होंने कई स्थानों से कर्जा लिया। अपने ठिकाने के कई गाँव अजमेर और ब्यावर के सेठों के गिरवी रखे और भूखी मानवता की सेवा में जुट गये। खरवा में उन दिनों में तीन स्थानों पर खीचड़ा बनता था और भूखे लोगों को खिलाया जाता था। कई मार्ग से लगते स्थानों पर चने बाँटने का प्रबन्ध कर रखा था। मारवाड़ के समीपस्थ अनेक गाँवों के अभाव पीड़ित राजपूत परिवार भी खरवा आ गये थे। उनके निवास के लिए मकान और खाने के लिये भोजन का प्रबन्ध जब तक वे खरवा में रहे, ठिकाने की तरफ से होता रहा। इस प्रकार उस छपनियाँ अकाल में सीमित साधनों के होते हुए भी राव गोपालसिंह ने अपने ठिकाने की आय से अधिक द्रव्य भूखी जनता के पालनार्थ दिल खोलकर खर्च किया। उसी समय से उनके ठिकाने पर लाखों का कर्ज भार चढ़ गया। उनके परम उदार चरित्र के दृष्टा समकालीन चारण कवियों ने मानवता की सेवा और उनके असीम त्याग को निम्नांकित शब्दों में चिरस्थायी बना दिया–

''भय खायो भूपति किता, दुरभख छपनों देख।
पाळी प्रजा गोपालसी, परम धरम चहुँ पेख।।
राणी जाया राजवी, जूड़ै न दूजा ओड़।
छपन साल द्रब छोलती, रंग गोप राठौड़।।''

तत्कालीन अन्य घटनाएँ :– वि.सं. 1957 (ई.सं. 1800) में चीन का युद्ध आरम्भ हो चुका था। अंग्रेजों ने भी अपनी सेनाएँ उक्त युद्ध में भाग लेने भेजी थी। बीकानेर महाराजा गंगासिंह अपनी शुतर सवार सेना गंगा रसाले के साथ अंग्रेजों की तरफ से चीन युद्ध में भाग लेने गए थे। जोधपुर राज्य की सेना के कुछ घुड़सवार दस्ते भी युद्ध में भाग लेने गये थे।

खरवा के राव गोपालसिंह ने भी उक्त युद्ध में जाने के लिये प्रार्थना पत्र भेजकर वायसराय से स्वीकृति चाही, परन्तु सधन्यवाद उनकी प्रार्थना अस्वीकार कर दी गई। राव गोपालसिंह के नवयुवा मन में युद्ध में जाने एवं अपने पूर्वजों की भाँति शौर्य प्रदर्शित करते हुए युद्ध लड़ने की महत्ती आकांक्षा भरी हुई थी। साथ ही वे तब विकसित सामरिक टैक्निक का भी अध्ययन करना चाहते थे। परन्तु अजमेर की अंग्रेज सरकार के उच्चाधिकारी, अजमेर मेरवाड़ा के सामन्तों को ऐसा अवसर प्रदान करने के पक्ष में नहीं थे।

मसूदा के शासक रावबहादुर बहादुरसिंह की मृत्यु के समय उनके कोई जीवित पुत्र नहीं था। उनके एकमात्र पुत्र का अल्पायु में ही पिता की विद्यमानता में शरीरान्त हो चुका था। ऐसी अवस्था में मसूदा की खाली गद्दी के स्वामित्त्व के लिये मसूदा खानदान के दो दावेदारों ने अपने उजरात अंग्रेजों के इजलाश में पेश किए। उस समय कर्नल मेलबिल अजमेर के जिला कमिश्नर थे। प्रान्त के प्रमुख इस्तमरारदार सामन्तों से उक्त संदर्भ में परामर्श करने हेतु उसने एक मीटिंग बुलाई, भिणाय, खरवा, देवलिया, पीसांगन, जूनियाँ आदि के सामन्तों से उक्त विषय पर विचार–विमर्श करते हुए कर्नल मेलबिन ने पूछा–''मसूदा के लिये दो दावेदार लड़ रहे हैं। विवाद की जटिलता को देखते हुए मसूदा ठिकाने को सरकारी अधिकार में ले लिया जावे तो क्या आपत्ति है?'' कमिश्नर के मुख से ऐसी अनहोनी बात सुनकर सभी सरदार अवाक् रह गये और राव गोपालसिंह की तरफ देखने लगे। गोपालसिंह ने तत्काल उत्तर दिया–''सरकार को भूलकर भी ऐसा विचार नहीं करना चाहिए। यह प्रश्न केवल मसूदे का नहीं है, किन्तु समस्त इस्तिमरारदारों के मूलभूत अधिकारों का प्रश्न है। इस समय मसूदे के लिए दो दावेदार लड़ रहे हैं, परन्तु यदि सरकार ने मसूदा जब्त करने का निर्णय लिया तो यहाँ के राठौड़ों का बच्चा–बच्चा मसूदे का दावेदार बनकर लड़ेगा और उन लड़ने वालों में पहला व्यक्ति मैं होऊँगा।'' इतने स्पष्ट और निर्भीक उत्तर की आशा कमिश्नर को नहीं थी। वह चुप हो गया। किन्तु राव गोपालसिंह को उसी दिन से वह शंका की दृष्टि से देखने लगा। उसे उनमें राजद्रोह की बू आने लगी और वह उनसे असन्तुष्ट रहने लगा।

उसी कालखण्ड में इस्तिमरारदारों के काँजी होज रखने (आवारा पशुओं को बन्द रखने) एवं आबकारी (मदिरा निकालने) के अधिकारों को प्रान्तीय अंग्रेज

सरकार ने लेना चाहा। परन्तु इस्तिमरार सामन्तों के संगठित प्रयास एवं राव गोपालसिंह के दबंग नेतृत्व के कारण वे ऐसा नहीं कर सके। किन्तु राव गोपालसिंह के प्रति अंग्रेज अधिकारी अधिक शंकालु बनते चले गये।

उस समय तक खरवा ठिकाने पर काफी कर्ज चढ़ चुका था। तत्कालीन जिला कमिश्नर मिस्टर प्रिचर्ड ने राव गोपालसिंह को किसी एक ही बैंक से कर्ज लेकर अन्य छोटे-मोटे ऋणदाताओं को कर्ज चुकाने की सलाह दी। यद्यपि उक्त सलाह समयोचित थी, किन्तु प्रिचर्ड ने राव साहब से इस शर्तनामे पर हस्ताक्षर करवाने चाहे कि जब तक बैंक का कर्ज अदा न हो, तब तक ठिकाने पर सरकारी नियंत्रण रहेगा। यानी ठिकाना Court of Wards के अधीन रहेगा। स्वाभिमानी राव साहब ने उक्त शर्तनामे पर हस्ताक्षर करने से मना कर दिया। मिस्टर प्रिचर्ड ने अपने पद के प्रभाव से उन्हें दबाना चाहा। राव गोपालसिंह उसका तिरस्कार करते हुए वहाँ से उठकर चले गये। प्रिचर्ड सनकी, वहमी, अस्थिर चित्त एवं मानसिक रोग का शिकार था। उसे यह वहम हो गया कि गोपालसिंह ने उसे मारने की धमकी दी है। इस संदेह को प्रमाणित करने के लिये उसके पास कोई सबूत नहीं था। योग्य अंग्रेज अधिकारियों में भी उसके लिये कोई अच्छी राय नहीं थी। वे उसे अर्द्धविक्षिप्त ही समझते थे। एक दिन रेल से कहीं यात्रा करते हुए दो डिब्बों के बीच में गिर जाने से उसकी मृत्यु हो गई। वह आकस्मिक दुर्घटना जन्य मृत्यु थी या उसे किसी ने नीचे गिरा दिया था अथवा उसने आत्महत्या कर ली थी? खुफिया पुलिस द्वारा पूरी जाँच पड़ताल के पश्चात भी सही तथ्य प्रकाश में नहीं आया। अजमेर में जितने समय तक वह रहा, राव गोपालसिंह का भय भूत की तरह उसे सताता रहा। इस प्रकार राव गोपालसिंह का अंग्रेज अधिकारियों के प्रति उपेक्षा का रवैया दिन-प्रतिदिन बढ़ता चला गया और वे उनके संदेह के घेरे में अधिकाधिक आते चले गये। **(क्रमशः)**

खुद को पहचानो, हो कौन तुम

– श्रीमती अंजना कुड़ी

''बस बहुत हुआ, बस बहुत हुआ, अब तो खुद को कुछ पल के लिये रोको जरा! जब से पाया इस धरा पर हमने जन्म, ना पाया ऐसा समय कभी, शायद हमें था यहाँ कोई भ्रम।''

''अब वक्त यहाँ कुछ ऐसा आया, जो हमें खुद की पहचान बता रहा है, पड़ा था जो हमारी अक्ल पे पर्दा, धीरे-धीरे उसको हटा रहा है।''

''पंच तत्वों का था जो शरीर, उसे हीरे मोती का समझ लिया था, थी परतें जो मिट्टी की जमीं हुई, अब वक्त ने उसको झड़का दिया है।''

''दिया था जो ज्ञान पूर्वजों ने, दो कदम बढ़ाकर हमने उस पर विज्ञान मंड दिया, थे पूर्वज अल्प ज्ञानी कह कर, आज हमने खुद का मजाक उड़ा लिया।''

''खुद पर था इतना भरोसा व अभिमान कि क्या भला-क्या बुरा कुछ न सूझता था, पर आज अभिमान कौड़ियों में बिक गया।''

''आज तक न थी फुर्सत यहाँ किसी को भी मरने की, पर अब इस भरपेट फुर्सत में चाह नहीं है, किसी की भी मरने की।''

''इस भागदौड़ भरी जिन्दगी में क्या अजीब-सा है ठहराव आया, पर इसे ठहराव ना समझो यह एक हलचल है।''

बस जरूरत एक समुद्र मंथन की है।

''इस घूमती दुनिया के अजब-गजब मेलों में जाने कब खो गई थी हमारी पहचान, अब जरा खुद की वास्तविक पहचान करो, इन रुके हुए पलों में, कि हो कौन तुम, कहाँ से आए हो, कहाँ तुम्हें जाना है।''

साँसों की गठरी

– गिरधारीसिंह डोभाड़ा

सन् 1940–50 का दशक था। भारत का स्वतंत्रता–आन्दोलन पूरे जोश में चल रहा था। भारत के परीन्दे अंग्रेजी पींजरे से बाहर निकल कर लम्बी–लम्बी उड़ाने भरने के लिए अपने पंख फड़फड़ा रहे थे। पढे-लिखे, अनपढ, व्यापारी, किसान, किशोर, युवा–युवती अपने काम धंधे छोड़कर, हिन्दु, मुस्लिम, ईसाई सभी एक जुट होकर, बड़ी उमंग के साथ, दृढ–विश्वास से कष्ट सहिष्णु बनकर लोहे का अंग्रेजी पींजरा तोड़ने के लिये जोर लगा रहे थे। इनमें माँ रजपूती के परिन्दे भी थे। लेकिन इनके अग्रज बड़े आकार वाले खग किनारे खड़े थे। वे तो आका अंग्रेजों द्वारा पींजरे में डाले गये, कच्चे–पक्के जूठे फल खाकर ही संतुष्ट थे। वैसा खाकर ही अपनी तोंद पर हाथ फिराकर उसका आकार बढाने में ही संतोष और गौरव का अनुभव कर रहे थे। पिंजरे से बाहर क्या हो रहा है, इससे उन्हें कोई लेना देना नहीं था। महलों और हवेलियों के बाहर माँ रजपूती सिसक रही है, यह उन्हें सुनाई नहीं देता था।

भारत में प्रभात का सूर्य अंगड़ाई लेता मालूम हो रहा था। कुछ ही समय में देश में अंग्रेजी पींजरा टूटने वाला है और देश के परीन्दे आकाश में पंख फैलाकर उड़ाने भरने वाले हैं। हरे भरे खेत खलिहान होंगे, पेड़ों की शाखाएँ विध–विध पक्के मीठे, मधुर फलों से लदी होगी। इन फलों का आनन्द लूटेंगे और मधुर–मधुर सुरीले गीत गायेंगे, गीत सुनेंगे, मुस्करायेंगे। दीपावली के दीप जलेंगे और उजाला ही उजाला होगा।

दीपावली का दिन आश्विन मास कृष्ण पक्ष की अमावस्या के दिन आता है। उस दिन आकाश में चन्द्र दिखाई नहीं देता। सब ओर अंधेरा ही अंधेरा होता है। सन् 1944 की दीपावली की अंधेरी रात्रि को एक परीन्दा अपने घर से दूर एक अंधेरी कोठरी में बैठा था। उसी अंधेरी कोठरी में उसे एक नारी के सिसकने की आवाज सुनाई दी। युवक ने पूछा–'कौन हो तुम? अन्धेरे में क्यों बैठी हो और क्यों सिसक रही हो?' युवक को प्रत्युतर सुनाई दिया–'मैं तेरी माँ हूँ, तेरी कौम। तेरी क्षत्रिया माँ, तेरी राजपूती कौम।' परीन्दे ने और निकट जाकर देखा, उसके चेहरे पर नजर डाली, चेहरा मुरझाया सा लगा। चेहरे पर कोई मुस्कान नहीं। उसकी तो सांस भी मंद गति से चल रही थी। परीन्दे ने पूछा–'माँ! अपनी साँसों की गठरी कहाँ छोड़ आई हो? मुझे बताओ मैं उसे ले आऊँगा।' माँ बोली–'बेटा अभी तो तूं युवावस्था में कदम रख रहा है, कैसे मेरी साँसों की गठरी लायेगा?'

परीन्दा बोला–'नहीं माँ! मैंने अभी–अभी युवावस्था में कदम रखा है तो क्या हुआ, मैं महाराज भागीरथ की संतान हूँ। चाहे कितनी ही कठिन तपस्या करनी पड़े मैं मेरे पूर्वजों की तरह गंगा को भी स्वर्ग से पृथ्वी पर आने को मजबूर कर दूंगा। माँ! मैने जिसकी कोख से जन्म लिया है उससे मेरा नया परिवार बसाने की इजाजत मैने ले ली है। बस बता दे माँ! तेरी मुस्काने कहाँ बिकती हैं? उसे भी मैं अपने तप–त्याग से खरीद लाऊँगा।' माँ बोली–'अरे बेटा! अभी तो तू छोटा है, छोटे बच्चों जैसी बातें कर रहा है।' 'नहीं माँ! मैं छोटा भी तो ध्रुव की संतान हूँ। मेरी निष्ठा भगवान विष्णु को भी नंगे पाँव दौड़ने पर विवश करेगी।'

माँ बोली–'तू नहीं मानेगा न, दृढ निश्चयी जो ठहरा।' परीन्दा–'हाँ माँ! मेरा निश्चय दृढ है। तेरी खुशियाँ, तेरी शान, तेरा गौरव पुन: स्थापित करने की मेरी इच्छा अब मेरा संकल्प बन गई है। मैं इस मरुभूमि में कमल खिलाऊँगा।' माँ बोली–'अरे बेटा! यह भूमि तो तेरे पूर्वजों की तलवार से दस्युओं, यवनों, अनार्यों के खून से लाल हो गई है। तेरे पूर्वजों के घोड़ों की टापों से टूट कर यह मिट्टी अब तो बालू हो गई है। उनकी हुंकारें सुनकर बादल भी यहाँ आने की हिम्मत नहीं करते, जिससे वर्षा भी नहीं आती तू सिंचाई भी कैसे करेगा, अब तो यह भूमि अपनी उर्वरा खो बैठी है, तो तेरी खेती कैसे संभव होगी?'

'माँ! मैं मेरे स्वधर्म पालन का, अपने कर्तव्य पालन का हल चलाऊँगा। मेरे क्षत्रियोचित संस्कारों का उसमें खाद डालूंगा। मैंने श्री कृष्ण का गीता का संदेश सुन लिया है। मैं स्वधर्म का बीज डालूंगा। अपने पसीने से उसकी सिंचाई करूँगा। रात और दिन उसका पहरा रखूंगा, न उसे सूखने दूंगा और न उसे टूटने दूंगा। उसके प्रति प्रीत निभाने का मैंने प्रण लिया है। मेरे हृदय का पवित्र भाव उसकी रक्षा करेगा। मेरा निष्काम भाव 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' उसको शक्ति प्रदान करेगा, उसको सशक्त बनायेगा। निरंतर, नियमित स्वाध्याय करके सुसंस्कारों, सद्गुणों से उसको छाया प्रदान करता रहूंगा। फूल की कोई पंखुडी मुरझा न जाए इसके लिये उस पर प्रेम का छिड़काव करूँगा।'

सन् 1944 की दीपावली की रात्रि को उस परीन्दे ने बीच बोया जो 22 दिसम्बर, 1946 को अंकुरित हो गया। वह परीन्दा और कोई नहीं, श्रद्धेय तनसिंहजी ही थे और वह अंकुर 'श्री क्षत्रिय युवक संघ' है।

राजपूतों में अपना कर्तव्य पालन की अकर्मण्यता व्याप्त हो गई थी। पुरखों के गौरव को बचाने के लिये कोई ठोस कार्य नहीं हो रहा था। पू. तनसिंहजी ने किशोरावस्था से ही इस ओर कदम बढाए और श्री क्षत्रिय युवक संघ की स्थापना की। उन्होंने अपनी निराली संस्कारमय कर्मप्रणाली की शाखाओं और शिविरों के माध्यम से राजपूत बालकों को निरन्तर रूप से कर्मशील बनाकर नई जान डालना शुरू किया, नई चेतना भरने लगे। नई उमंगें जगाने लगे। उनका यह कारवाँ बढ़ता गया। इस बनजारे के साथ किशोर और युवा क्षत्रिय केसरिया बाना पहने उमड़ने लगे। माँ कौम को, समाज को, मानव जाति को एक नई राह मिली। कुछ ही लोगों की संख्या के साथ चला यह कारवां अब सैंकड़ों, हजारों, लाखों की तादाद में दिखने लगा। केवल संख्यात्मक ही नहीं बल्कि गुणात्मक भी। संसार ने 22 दिसम्बर, 2021 के दिन राजस्थान के जयपुर शहर में भवानी निकेतन संकुल के प्रांगण में इसे देखा। देखकर राजपूत के ही नहीं, अन्य जातियों के मुँह से भी निकल पड़ा-'न भूतो, न भविष्यति।

यह लिखने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि मानव इतिहास में संस्कारमय कर्मप्रणाली द्वारा सत्वगुण प्रधान संगठन का यह एकमात्र पहला अभिनव प्रयोग है। चाहे नया ही हो लेकिन विश्वास से भरा है। इस संगठन की ज्योत में स्वाहा होने के लिए परवाने, पतंगे उद्यत हैं। क्यों न हो, यह ज्योत जगाने वाला तो अपना ही है, जो एक सपना लेकर आया है। पूज्यश्री हमें आश्वस्त करते हुए गाते हैं कि-**'कल का खिला हूँ यह चिन्ता न करना, अपना हूँ, सपना हूँ, युगों से हूँ तेरे हृदय का। धरती है साक्षी और अम्बर गवाही, आकांक्षी तेरी विजय का। पतंगों की रीत हूँ, कोमल सा गीत हूँ, अभिनव प्रयास सा, गहरे विश्वास सा।'**

निराशा में डूबी माँ कौम-क्षत्रिय जाति में विश्वास और उत्साह भरने के लिये, रुग्णावस्था में पड़ी, अन्तिम साँसे भर रही माँ से कहते हैं-'हे माँ! तू अपनी सांसों की गठरी कहाँ छोड़ आई हो, मुझको बता दो, मैं उसे ले आऊँगा और पूछते हैं कि तेरे चेहरे की मुस्कान किस कार्य से खिलेगी, यह भी मुझे सुना दो, तुम जिस कार्य से खुश रहोगी मैं वही करूँगा।

कहाँ छोड़ आये हो साँसों की गठरी अपनी मुझको बता दो
कहाँ है वो देश जिसमें बिकती मुस्काने तेरी अब तो सुना दो
ले आऊँगा उन को आज।।

श्री क्षत्रिय युवक संघ अपनी सामुहिक संस्कारमयी कर्म प्रणाली से संस्कार निर्माण निष्काम भाव से करते हुए क्षत्रिय कुल में नया प्राण भर रहा है और जाति के लोगों के चेहरे पर अब मुस्कानें दिख रही है, उभर रही हैं। कर्मठ योगी, तपस्वी, युग दृष्टा, स्व. पूज्य श्री तनसिंहजी आपको शत् शत् नमन है।

कर्म को वचन के अनुरूप और वचन को कर्म के अनुरूप बनाओ। - **शेक्सपियर**

गरासणी

– वनराज सिंह

''गेमा भाई! इस कन्या को आज उसके ससुराल छोड़ने जाना है। आप साथ जाओगे न?''

''ना दरबार! तीन प्रतिशत का भी जहाँ खतरा न हो, वहाँ मेरे जाने का काम नहीं होता है। गेमा को छोड़ने जाना तो पाँच-पच्चीस हजार का जेवर हो ऐसे कामों में ही ठीक लगता है। दूसरे वळाविया (रक्षक के रूप में छोड़ने के लिये साथ जाने वाले) बहुत हैं।''

ढोलिये पर लेटे हुए हुक्के का दम भरते हुए ऐसा उत्तर देने वाला यह गेमा पच्छेगाँव का कारड़ीया रजपूत था। गोहिलवाड़ क्षेत्र के पच्छेगाँव में ऐसे 40-50 कारड़ीया रजपूत गिरासदारों (राजपूतों) की पगार पर निर्भर थे। दूसरे गाँव जाने वाली महिलाओं या अन्यों के साथ रक्षक के रूप में जाने का काम इनसे लिया जाता था। इन सभी कारड़ियों में गेमा कुछ विशेष था। जिस बैलगाड़ी के साथ गेमा रक्षक बनकर चले उस बैलगाड़ी के पास कोई लुटेरा आ नहीं सकता। ऐसे-वैसे को तो गेमा ना का उत्तर ही दे देता। गेमा का काम कोई खेल नहीं था।

एक दिन गांव के बापु खुमाणसंगजी की ओर से गेमा को बुलावा आया। खुमाणसंग जी की लड़की रूपाली बा की भाल क्षेत्र में हेबतपुर गाँव में ससुराल थी। वहाँ उसके सीमंत संस्कार का अवसर था। गोद भराई करके उसे अपने पीहर ले आना था। एक बैलगाड़ी, दो दासी, एक गेमा और एक कारड़ीया ये सब हेबतपुर गाँव से रूपाली बा को ले आने के लिये चल पड़े।

हेबतपुर से पच्छेगाँव आने में मोणपुर गाँव तक लगभग दस कोस लम्बा भाल का रण है। दिन में उस क्षेत्र में कोई यात्रा नहीं करता था क्योंकि पानी वहाँ है नहीं और बिना पानी प्राण सूख जाएँ। इसलिए रूपाली बा को रात में ही रवाना किया। वेलड़ी (विदाई की जाने वाली बैलगाड़ी) में रूपाली बा और दो दासी बैठ गये। दूसरी बैलगाड़ी में गेमा और उसका साथी तथा पानी की दो मटकी रखी गई थी। बैलगाड़ी जोत कर तारों के उजाले में सभी चल पड़े। रूपाली बा के पास एक डिब्बा था। उसमें पाँच हजार के सोने के जेवर थे। स्वयं उसके अंगों पर गहनों का शृंगार भलीभाँति, भरपूर था। बैलगाड़ी चली तब गेमा तो जैसे पालने में हिचकोले लेने लगा। उसने पछेड़ी (खुदरा खेस) ओढकर लम्बा होकर सोना शुरू कर दिया। घोर अंधेरे में उसके खर्राटे बोलने लगे। बैलगाड़ी वाले ने एक बार उसे बतला लिया- ''गेमा भाई रात अंधेरी है, सोने से पार नहीं पड़नी होशियार रहना पड़ेगा।''

गेमा ने उत्तर दिया-'अरे! तू इस गेमा को पहचानता नहीं? गेमा जहाँ हो वहाँ लुटेरा दिखता ही नहीं है। तू अपना काम कर बैलगाड़ी चलाता जा।''

गेमा के बजते नसकारों, खर्राटों की आवाज रूपाली बा की बैलगाड़ी तक सुनाई दिये। बेलड़ी का पर्दा उठाकर रूपाली बा ने भी एक बार कहकर देखा-''गेमा भाई! अभी सोना नहीं चाहिए।''

नींद ही नींद में गेमा गुनगुनाने लगा-''मैं कौन? मैं गेमा।'' ऐसा करते-करते बेलावदार गाँव लाँघ गये। किन्तु वहाँ से डेढ-दो मील पर एक छोटा तालाब आता है। बैलगाड़ी वाले को दूर से तालाब के पास आग की चिनगारी उड़ती दिखाई दी। उसे वहम हुआ कि कोई चकमक पत्थर घिसकर अंगार पैदा कर रहा है। गेमा को उसने और आवाज दी-''गेमा भाई! अब गफलत में रहने जैसी बात नहीं रही।''

गेमा का एक ही उत्तर था-''मुझे पहचानता है? मैं कौन? मैं गेमा।''

बैलगाड़ियाँ तालाब के निकट पहुँची तब गाड़ी चलाने वाले को तालाब किनारे 10-12 आदमियों का टोला दिखाई दिया। उसकी छाती काँप उठी। गेमा को उसने झंझोड़ा। परन्तु गेमा कोई उठने वाला थोड़ा ही था। वह तो इसी अहंकार में डूबा था, वह तो गेमा है।

देखते ही देखते अंधेरे में 12 लोग वेलड़ी घेर कर खड़े हो गये और चिल्लाकर रुकने के लिये फटकार लगाई। गेमा झपक कर आँख मसलता हुआ उठ बैठता है और सामने चिल्लाकर फटकारता है-''मुझे पहचानते हो? मैं कौन? मैं गेमा।'' इसी बीच गेमा पर एक मजबूत लाठी की चोट

पड़ी और गेमा तो जमीन दोस्त बन गया। उनमें से एक व्यक्ति बोला,-अरे इसको जल्दी से रणगोवाळियो (बाँधकर रण में छोड़ना) कर दो। लुटेरों ने उसे बैठाकर उसके हाथ-पाँव बांध दिये। पांवों के घुटनों को खड़ा रखकर घुटनों के नीचे एक आर-पार लाठी डाली और उसे उठाकर दूर डाला तथा फिर गुड़ा दिया। (इस क्रिया को रणगोवाळियो कहते हैं)

''कौन है वेलड़ी में? अपने पास के जेवर जल्दी से दे दो?'' रूपाली बा ने वेलड़ी का पर्दा हटा दिया और लुटेरों की माँग के अनुसार पाँच हजार के जेवरों से भरा डिब्बा उन्हें दे दिया। तारों के प्रकाश में रूपाली बा के शरीर पर पहना सोना चमक रहा था। लुटेरे बोले-''अपने शरीर पर पहने गहने भी उतार दो। बा ने सभी जेवर एक-एक कर उतार कर उन्हें दे दिए। सिर्फ पाँव की पाजेब बाकी रही। ''पाजेब भी उतार कर दो।''-लुटरों ने जोर देकर बोला।

रूपाली बा विनती करने लगी-''भई ये नरेड़ी (गाँव) की ठोस घड़ी हुई पाजेब है और काठी है, चिपक रही है और मैं गर्भ से हूँ, मेरे से यह नहीं खुलेगी, इसलिए बाकी सब दे दिया अब बस करो भाई!''

''सफाई मत दो और जल्दी से पाजेब निकाल कर दो।''

''तब फिर आप ही निकाल लो''-यह कहकर रूपाली बा ने वेलड़ी में बैठे-बैठे अपने पाँव पसार दिये। अपनी गोफन की मजबूत रस्सी लगाकर आमने-सामने दो कोली पाजेब निकालने में लगे और बाकी सब बातों में लग गये। इधर किसी का ध्यान नहीं था।

रूपाली बा ने तिरछी नजर से चारों ओर देखा। अन्य कुछ तो दिखाई नहीं दिया पर बैलगाड़ी का आडा (आमने-सामने लाठियों से बनाया, बैलगाड़ी खड़ी करने वाला जुगाड़) देखा। सोचने का तो समय ही कहाँ था। कामी लुटरे तो क्षत्राणी के पाँव से पाजेब निकालते मस्करी कर रहे थे। रूपाली बा ने आडा खींचकर नीचे बैठे पाजेब खींचने वाले दोनों लुटेरों की खोपड़ी पर खींचकर एक-एक चोट की, दोनों की खोपड़ी फट गई। दोनों धरती पर लुढक गये।

अब तो गरासणी (रूपाली बा) पर सूरातन चढ बैठा। उसी आडे को लेकर कूद पड़ी और भिड़ गई दस लुटरों से। दस लुटेरों की लाठियाँ उसके शरीर पर आ रही थी। चोट गहरी लगने पर घुटनों पर बैठ जाती और तुरन्त उठकर आडे से चोट करती। चण्डी रूप से घूमती क्षत्राणी की चोट जिस पर गिरती वह दुबारा उठ नहीं पाता। अट्ठारह वर्ष की गलवंती गरासणी लाठी और तलवार की चोटें झेलती हुई घूम-घूम कर लुटेरों पर चोट कर रही है। इसी बीच एक लुटेरा गिरा, उसकी तलवार क्षत्राणी के हाथ आ गई। फिर तो जगदम्बा का जैसे साक्षात रूप प्रकट हुआ हो। जो बचे थे वे लुटेरे भाग छूटे। गेमा रणगोवाळियो होकर एक तरफ पड़ा था। बा ने कहा-''छोड़ दो उस नपुंसक को।'' छूट कर गेमा चला गया, मुँह न दिखा सका। फिर कभी पच्छेगाँव में दिखाई नहीं दिया।

युवा गरासणी के सीने में तेज श्वास चल रही थी। उसके प्रत्येक अंग से खून टपक रहा था। नेत्रों में ज्वालाएँ चमक रही थी। हाथ में खून से लथपथ तलवार थी। काली रात्रि में चण्डिका प्रकट हुई। वाह गरासणी! वन के वृक्ष भी झुक गये थे। बैलगाड़ी में बैठने की उसने मना कर दी। कोई जबरदस्ती उसे बैठा नहीं सके। उसके शरीर में सूरातन फूट रहा था। फिर चाहे कितने ही घाव लगे हों कोसों-कोसों तक चल सकना संभव था, चढा हुआ सूरातन उतर नहीं सकता। रूपाली बा बैलगाड़ी के पीछे-पीछे चारों तरफ नजर रखे हुए चल पड़ी।

सुबह हुई तब मोणपुर गाँव के बाहर पहुँच गये। यह रूपाली बा के मामा दादाभा का गाँव था। मामा को खबर भेजी कि जल्दी कसूंबा लेकर आवें। कसूंबा लेकर मामा तुरन्त आये। जख्मों की पीड़ा ज्यादा न हो इसलिए कसूंबा पिलाया और मामा ने आग्रह किया कि-''बेटा! यहाँ रुक जाओ।' ''ना मामा मुझे जल्दी घर पहुँचना है। माँ और बापु को मिल लेना है।''

गाँव की बिटिया पच्छेगाँव पहुँचे, उससे पहले तो बिटिया के शौर्य की बात गाँव में प्रसारित हो गई थी। सभी को सावधान कर दिया गया था कि कोई उससे उलझे नहीं, नहीं तो बिटिया की अगर चमक उठ गई तो खतरा है। खून से लथपथ गाँव की बहन आई, उसे ढोलिये पर सुलाया। बुजुर्ग लोग कहने लगे-''बेटा! क्यों इतने घाव सहे, पाँच हजार के गहने और चले जाते तो भी तेरे बापु के पास क्या कुछ घट जाता?'' पर गहना बचाना उसका उद्देश्य नहीं था, बदमाश लुटेरों को दण्ड देकर सबक सिखाना था।

एक प्रहर बाद उसका जीव चला गया, किन्तु उसका इतिहास न अभी तक गया है न आगे कभी जाएगा।

●

एकलिंग दीवान राष्ट्र गौरव राणा क़ीक़ा

– अरविन्द सिंह खोड़िया खेड़ा

ज्येष्ठ शुक्ला तृतीया रविवार सूर्योदय से 47 घड़ी 13 पल गए विक्रम संवत् 1597 (9 मई, ईसवी सन् 1540) के दिन महारानी जयवंता बाईजी की कोख से मेवाड़ के राजकुमार कुँवर प्रताप का जन्म हुआ। कुछ इतिहासकार ऐसा मानते हैं कि उसी दिन महाराणा उदयसिंह ने चित्तौड़ पर विजय प्राप्त कर बनवीर के कुराज को समाप्त किया था जिससे प्रजा में उत्साह का संचार हो गया और खुशियाँ दुगुनी हो गई। माता जयवंता बाईजी की देखरेख में कुँवर प्रताप का लालन-पालन हुआ। माता ने अपने कुल गौरव बप्पा रावल, राणा हम्मीर, राणा कुंभा, राणा सांगा की शौर्य गाथाएँ सुनाकर प्रताप को भविष्य के लिये सदैव स्वाभिमानी व निडर बनाया। कुँवर प्रताप धीरे-धीरे मेवाड़ की आम जनता में घुलने-मिलने लगे और लोकप्रिय हो गये। जनता प्रताप को क़ीक़ा नाम से सम्बोधित करने लगी। क़ीक़ा एक वागड़ी शब्द है जिसका अर्थ पुत्र या बेटा होता है। मेवाड़ के कई भागों में क़ीक़ा की जगह कूका का उच्चारण भी किया जाता है।

1572 में महाराणा उदयसिंह का स्वर्गवास होता है और स्वर्गवास के पूर्व जगमाल को मेवाड़ का उत्तराधिकारी घोषित कर देने से मेवाड़ के सामंत व प्रजा जगमाल को महाराणा के रूप में स्वीकार करने से इन्कार कर देते हैं। सामंतों व प्रजा की सर्वसम्मति से प्रताप को मेवाड़ का महाराणा घोषित किया जाता है। इससे एक बात तो साफ है कि मेवाड़ में राजतंत्र में भी लोकतंत्र था जिसमें हर कार्य में प्रजा की भागीदारी थी। मेवाड़ के महाराणा स्वयं को कभी महाराणा मानते ही नहीं थे। महाराणा तो आराध्यदेव एकलिंगजी को मानते हैं और स्वयं को उनका दीवान मानते हैं, इसलिए मेवाड़ के महाराणा को एकलिंग दीवान कहा जाता है।

जिस समय प्रताप के हाथों में मेवाड़ की कमान आई उस समय परिस्थितियाँ विकट थी, लेकिन प्रताप ने साहस, धैर्य व सूझबूझ से काम लिया। अकबर अपनी साम्राज्यवादी नीति के तहत मेवाड़ को अपने अधीन करने के लिये कई बार वार्ता के लिए दूत भेजता है, लेकिन स्वाभिमानी राणा प्रताप सिरे से खारिज कर देते हैं। प्रताप के लिये स्वाभिमान से बढ़कर कुछ भी नहीं था। महाराणा प्रताप ही थे जिन्होंने अकबर के पूरे हिन्दुस्तान में राज करने के सपने को कभी पूरा नहीं होने दिया। 1576 में अंततः हल्दीघाटी में अकबर की सेना व महाराणा प्रताप के मध्य भीषण युद्ध होता है जिसमें राणा प्रताप व मेवाड़ी सेना ने जो शौर्य व पराक्रम दिखाया उसे इतिहास के स्वर्णिम पन्नों में दर्ज किया गया।

हल्दीघाटी युद्ध के बाद 1583 में दिवेर युद्ध में पुनः महाराणा प्रताप मुगलों को बुरी तरह परास्त करते हैं, इस युद्ध में महाराणा प्रताप बहलोल खाँ को तलवार से घोड़े सहित काट देते हैं तथा कुँवर अमरसिंह सेरिमा सुल्तान खाँ पर भाले से वार करते हैं, वह भाला सुल्तान खाँ के सीने में पार होकर जमीन में धंस जाता है। इस युद्ध में मेवाड़ी शूरवीरों ने मुगलों की 36 के आसपास चौकियों को नष्ट कर दिया। मुगल सेना के 15-20 हजार सैनिक महाराणा प्रताप के सामने आत्म समर्पण करते हैं। दिवेर विजय के कुछ वर्ष बाद महाराणा प्रताप चावंड को अपनी राजधानी बनाते हैं, चावंड़ प्राकृतिक व सुरक्षा दोनों ही दृष्टि से उपयुक्त जगह थी। चावंड में महाराणा प्रताप चामुंडा माता का मंदिर बनवाते हैं। चावंड में रहते हुए महाराणा प्रताप आमेर रियासत के मालपुरा पर आक्रमण करते हैं और मालपुरा पर विजय हासिल करते हैं। कुछ इतिहासकार मालपुरा विजय की घटना को अमरसिंह के काल की भी मानते हैं। चावंड में महाराणा प्रताप ने कई चित्रकारों को

(शेष पृष्ठ 33 पर)

यह है अपना संघ साथियों इस फर्ज को हमें निभाना है।

– दीया चौहान, खरोड़िया

एक-एक लहू की बूँद का
कर्ज हमें चुकाना है
क्षत्रिय के सिर का मूल्य अमूल्य है
जिसे हाड़ी ने काट भेंट स्वरूप दिया
वहीं कलाजी ने इसके सम्मान के खातिर
अपना जीवन त्याग दिया
कभी क्षत्रिय किसी से न हारा है
हारा तभी है जब समक्ष क्षत्रिय आया है
एकता का संदेश हमें फैलाना है
जो गलतियाँ पहले हुई उसे न हमें दोहराना है
यह है अपना संघ साथियों
इस फर्ज को हमें निभाना है
राजस्थान की भूमि का हर जिला क्षत्रिय है
राव जोधा का जोधपुर
जयसिंह का जयपुर
उदयसिंह का उदयपुर
डूंगरसिंह का डूँगरपुर
अफगानी से लड़े पृथ्वीराज
हल्दीघाटी में लड़े महाराणा
चेतक जिनकी सवारी था
चौहान का केवल बाण ही काफी था
प्रताप का भाला सहस्रों पर भारी था
बप्पा रावल ने ईरानियों को खूब दौड़ाया था
किरण देवी ने अकबर को घुटनों पर झुकाया था
भामाशाह की ईमानदारी कोई कम नहीं थी
कभी न रुका वह कुम्भा था
जयमल पत्ता की वीरता पर कोई संकोच नहीं था
गजनी ने लूटा सोमनाथ
किन्तु न लूट सका हमारी धरोहर
चित्तौड़ का दुर्ग याद दिलाए
कर्मवती व पद्मिनी का जौहर
गौरा व बादल ने लगाई थी
खिलजी की हार पर पक्की मोहर
80 घाव खाकर भी नहीं झुका वह सांगा
खून बह रहा था जैसे बह रही हो गंगा
दुर्गादास के लिए राष्ट्र भक्ति
चन्दबरदाई के लिए मित्र भक्ति
झाला मान के लिए प्रताप भक्ति
सीता के लिए राम भक्ति
पन्ना के लिये स्वामी भक्ति
मीरा की कृष्ण भक्ति, सदैव सर्वोपरि रही
क्षत्रिय धर्म में स्त्रियों का योगदान भी कोई कम नहीं
पुरुषोत्तम राम व चक्रधारी कृष्ण ने
जिस कुल वंश में अवतार लिया
उस कुल की यही परिभाषा है
प्राण जाए पर वचन न जाए
यही हमें सिखलाता है
न खिलजी, न गौरी, न अकबर, न गजनी
हमारा इतिहास केवल राजपुताना है
और इसी कर्ज को हमें
पूरी श्रद्धा से निभाना है
माँ भवानी हमारी शान
तनसिंह जी हमारी आन है
केसरिया हमारी जान है
क्षत्रिय हमारी पहचान है
भरी पड़ी हमारी म्यान है
शमशीर निकली तो।
न बचेंगे किसी के प्राण
मगर हम चाहते सबका कल्याण हैं
इस संस्कृति पर मुझे अभिमान है
आपको और उन गुमनाम हस्तियों को मेरा
सादर प्रणाम है!

देवी राठासण मंदिर (राष्ट्रश्येना) मरूवास (उदयपुर) : धार्मिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन

– डिम्पल शेखावत, सीनियर रिसर्च फेलो

राजस्थान के उदयपुर जिले की गिरवा तहसील के गाँव मरूवास (झालों का गुढ़ा) में एकलिंग जी ट्रस्ट (मेवाड़) के अंतर्गत एक प्राचीन देवी मंदिर है जिसे स्थानीय जन राठासेण (राठासण) माता जी के नाम से पुकारते हैं। लगभग 3000 फीट ऊँची दुर्गम पहाड़ी पर स्थित देवी राठासण का यह मंदिर अनेक कारणों से विशिष्ट प्रतीत होता है, ऐसा ही एक कारण ऐतिहासिक व धार्मिक मूल ग्रंथों में इन देवी के संबंध में विवरणों का आना है। मेवाड़ के ऐतिहासिक महत्त्व के प्राचीन नागदा क्षेत्र (कैलाशपुरी के पास) जो 10वीं शताब्दी तक मेवाड़ की राजधानी रहा, यह मंदिर उसी नागदा के प्रसिद्ध ऐतिहासिक अवशेषों से थोड़ी ही दूरी पर स्थित है। मंदिर में विराजमान राठासण देवी को 'मेदपाट की रक्षिणी' होने की उपाधि भी दी गई थी, इतनी महत्त्वपूर्ण उपाधि धारिणी मेवाड़ की इन देवी के मंदिर के विशिष्ट होने का एक अन्य महत्त्वपूर्ण कारण कुछ इतिहास की पुस्तकों व स्थानीय क्षेत्र में इन्हें राजस्थान की एक वीर राजपूत जाति 'राठौड़ों' की कुलदेवी के रूप में उल्लेखित करना है। यह तथ्य इन देवी तथा इनके मंदिर के संबंध में शोध की संभावना व जिज्ञासा दोनों को और अधिक बढ़ा देता है, क्योंकि राजस्थान के राठौड़ों के संबंध में यह सर्वज्ञात है कि उनकी कुलदेवी 'श्री नागणेचा' है जिनका प्रमुख धाम बाड़मेर स्थित 'नागाणा' नामक स्थान है।

अब यहाँ कुछ प्रश्न उत्पन्न होते हैं, जैसे-यदि देवी राठासण राठौड़ों की कुलदेवी है तो मेवाड़ क्षेत्र में इनका यह प्राचीन मंदिर कब तथा किसने बनवाया? साथ ही गुहिल राजवंश शासित क्षेत्र में राठौड़ों की कुलदेवी मंदिर को 'मेदपाट की रक्षिणी' होने की महान उपाधि क्यों दी गयी? क्या वास्तव में देवी राठासण और नागणेचा देवी में कोई संबंध है? मेवाड़ में देवी के इस मंदिर तथा मंदिर के इतिहास संबंधी ऐसे ही अनेक प्रश्नों का शोधपूर्ण उत्तर ढूंढने का प्रयास इस आलेख में किया गया है। यह शोध विशेष रूप से मेवाड़ के तत्कालीन इतिहास को अधिक स्पष्ट ढंग से समझने में भी हमारी सहायता करता है, इस कार्य में तथ्यों की सत्यता, उचित ऐतिहासिक साक्ष्यों के प्रकाश में जाँच कर ठोस जानकारियों के रूप में एकत्र की गई है। ऐतिहासिक साक्ष्यों के रूप में अधिकांशत: प्राथमिक स्रोतों का उपयोग कर अनुसंधान किया गया है, इन अध्ययनों का केन्द्र बिन्दु देवी राठासण का मरुवास गाँव (उदयपुर) स्थित यह मंदिर है।

संकेताक्षर :

एकलिंग, राठासण, राष्ट्रश्येना, जगदीश, दुर्गम, शिला, प्रशस्ति, मैनाक, त्रिकूट, कैलाशपुरी, राठौड़, राष्ट्रकूट, विश्वेश्वरनाथ, वायुपुराण, एकलिंग पुराण, विन्ध्यवासिनी, मेदपाट, श्येना, पक्षिणी, नागणेची, महालक्ष्मी, करवीर, जनगणना, बप्पा रावल, हारित ऋषि, मरूवास, नागदा, नांदेसमा, जैत्रसिंह, हस्तिकुण्डी, धनोप, वागड़, नाडोल, अन्नल देवी, आल्हण, धवल, दयालदास, चक्रेश्वरी, राठेश्वरी, चामुण्डा, जवंता, जगत सिंह, जसवंत सिंह महेचा, महकमा खास, महिषासुरमर्दिनी, राष्ट्रौढ़, राठवर, रठकुल, अमोघवर्ष, मीनाक्षी जैन, हेमाद्रि, चतुर्वर्ग चिन्तामणि, विश्वकर्माशास्त्र, नागछत्र, सिंह, तंत्रचूडामणी।

आलेख :

उदयपुर जिले की गिरवा तहसील के गाँव मरूवास (झालों का गुढ़ा) में श्री एकलिंग जी ट्रस्ट के अन्तर्गत एक प्राचीन मंदिर है। जिसे स्थानीय स्तर पर राठासेण

(राठसण) माता जी के नाम से जाना जाता है। इस मंदिर की कई विशेषताएँ हैं, जिनमें से एक इन देवी को राठौड़ों की कुल देवी बताया जाना है।

इस संदर्भ में इस क्षेत्र (झालों का गुढ़ा) में एक कहावत बहुत प्रसिद्ध है कि –

राठासण राठौडां सू रूठी
तो झाला पर तूठी[1]

जिसका अर्थ है कि राठासण राठौड़ों से नाराज हुई तो झालों पर प्रशंसित हुई। मंदिर से जुड़ी यही बात इसे सबसे रोचक बनाती है, यह मंदिर धरातल से लगभग 3000 फीट की ऊँचाई पर एक दुर्गम पहाड़ी पर बना है। 13 मई, 1652 का प्रतिष्ठित जगदीश मंदिर की प्रशस्ति की तृतीय शिला के 32वें तथा 33वें श्लोक में देवी मंदिर एवं इस पर्वत का वर्णन आया है। जो इस प्रकार है–

अथ द्रष्ट्रा महादेवी मत्युच्चाशिखरिस्थताम्।
राठासेनाभिधां बन्धां जानन्ति स्मेति देवता।।[2]

अर्थात् अब देखिए उस महादेवी को जो अति उन्नत शिखर पर विराजमान है। उस देवी का नाम राठासन जानकर देवगण भी वन्दना करते हैं। आगे वर्णन है –

राठासेनगिरीन्द्रजेति सततं मैनाकनामानुज।
प्रीत्याह्वानरता न चाव जग तेपायस्त्रिकूटाचलात्।।[3]

अर्थात् राठासेन का पर्वत, पहाड़ों को जीतने वाला और मैनाक नामक पर्वत का पुत्र लगता है और त्रिकूट (एकलिंग जी) से आने पर यह प्रीतिपूर्वक आमंत्रण और मनुहार करता प्रतीत होता है।

यह मंदिर उदयपुर से नाथद्वारा जाने वाले राजमार्ग पर दायीं ओर ऊँचे पर्वत पर होने के कारण कैलाशपुरी की ओर से आने वाले जनों को सहज ही दर्शन देता है। इस मंदिर के विषय में राष्ट्रकूटों (राठौड़ों) का इतिहास लिखने वाले पण्डित विश्वेश्वर नाथ रेऊ ने भी लिखा था तथा इनका (राष्ट्रश्येना) मंदिर, एकलिंग महादेव मंदिर से डेढ़ कोस की दूरी पर स्थित होना बताया[4], साथ ही पाँच सो वर्ष[5] प्राचीन तथा वायुपुराण से सम्बन्धित ''एकलिंग पुराण'' में भी देवी राष्ट्रश्येना का महत्त्वपूर्ण वर्णन प्राप्त होता है। यह पुराण एकलिंग जी की महिमा में महाराणा रायमल[6] के शासनकाल में लिखा गया था इसमें शैव तीर्थ स्थल को पुराण रूप में वर्णित किया गया है। इसके ग्यारहवें अध्याय में देवी को एकलिंग जी क्षेत्र के विन्ध्यवासिनी देवी के पूर्व दिशा की ओर प्राकार के अन्तर्गत हर्म्य में सुन्दर सोने के सिहांसन पर राष्ट्र की रक्षा के ध्येय से विराजमान बताया है जो इस प्रकार है –

प्राकारान्तर्गते हर्म्ये स्वर्ण सिहांसने शुभे।
स्थित्वा तत्र मति चक्रे राष्ट्ररक्षण हेतवे।।[7]

साथ ही आगे यह वर्णन भी है कि–

राष्ट्रसेनेति नाम्नीयं मेदपाटस्य रक्षणम्।
करोति न च भङ्गेगऽस्य यवनेभ्योऽपराग दपि।।[8]

अर्थात् यह राष्ट्रश्येना नामक देवी मेदपाट की रक्षक है। इन्हें यवन सेना तथा अन्य जन भी हानि नहीं पहुँचा सकते हैं। इस प्रकार देवी को मेवाड़ क्षेत्र की रक्षिणी के रूप में बहुत महत्त्वपूर्ण उपाधि दी गई है किन्तु यहाँ कौतूहल का विषय यह है कि राठौड़ों की कुल देवी को गुहिल/सिसोदिया शासित मेवाड़ (मेदपाट) की रक्षिणी की उपाधि क्यों दी गई?

एकलिंग पुराण में देवी की ''राष्ट्रश्येना'' जैसा शास्त्रीय नाम आया है, यहाँ संभव है कि यह 'राठासण' नामक लोक शब्द के शास्त्रीयकरण का प्रयास हो एवं यह भी सम्भव है कि इस राष्ट्रश्येना नाम का लोक अपभ्रंश ही 'राठासण' हो।[9] 15वीं शताब्दी के इस ग्रंथ में देवी के महत्त्व का इतना वर्णन इस ओर संकेत करता है कि यह मंदिर इस क्षेत्र में इस ग्रंथ निर्माण से कम से कम 100–200 वर्ष पूर्व में ही विद्यमान था जो रायमल जी के काल तक प्रसिद्धि लिए इस ग्रंथ में वर्णित हुआ लेकिन देवी का राठौड़ों की कुल देवी बताया जाना, इस क्षेत्र एवं इनके ज्ञात इतिहास की पृष्ठभूमि में एक अद्‌भुत तथ्य है।

वर्तमान में यह मंदिर बड़गाँव पंचायत क्षेत्र में आता है किन्तु इससे पूर्व यह कैलाशपुरी ग्राम पंचायत के

अन्तर्गत आता था तथा 1961 की भारत सरकार द्वारा करवाई गई कैलाशपुरी ग्राम की जनगणना के संबंध में हुए ग्राम सर्वेक्षण में इतिहास व धर्म सम्बन्धी जानकारियों में देवी राष्ट्रश्येना की चर्चा आई है। जहाँ देवी को राठासण तथा राष्ट्रश्येना दोनों ही नामों से संबोधित किया है। इस चर्चा का प्रसंग यहाँ बप्पा रावल तथा हारीत ऋषि की प्रसिद्ध कथा का वह अंश है जब हारीत ऋषि बप्पारावल की सेवा से प्रसन्न हुए तथा उन्होंने देवी राष्ट्रश्येना (राठासण) के आशीर्वाद का प्रयोग किया, जिससे देवी ने बप्पा को दर्शन दिए एवं उन्हें (बप्पा) ''एकलिंग जी'' को प्रसन्न करने की बात कही, इसके आगे की कथा लोक में बहुत प्रसिद्ध है।[10]

इसी कथा को कुछ परिवर्तन के साथ मुहणौत नैणसी ने भी अपनी ख्यात में लिखा है जिसके अनुसार हारीत ऋषि ने 12 वर्ष तक राठासण देवी (राष्ट्रश्येना) की आराधना की तथा बप्पा ने जो हारीत की गायें चराया करते थे, उन्होंने 12 वर्ष तक हारीत की सेवा की, जब हारीत स्वर्ग जाने लगे तो उन्होंने बप्पा को कुछ देना चाहा तथा क्रोधित हो देवी राठासण से कहा कि ''मैंने 12 वर्ष तपस्या की है परन्तु तूने कभी मेरी सुध नहीं ली'', इसके बाद देवी प्रकट हुई तथा उन्होंने कहा महादेव को प्रसन्न करो जिसके बाद पृथ्वी फटकर एकलिंग जी का ज्योतिर्लिंग प्रकट हुआ। ऋषि हारीत ने महादेव को प्रसन्न करते हुए तपस्या की और जब शिव ने हारीत को वर देना चाहा तब ऋषि ने प्रार्थना की कि बापा को मेवाड़ का राज्य दे दीजिए, फिर राठासण तथा महादेव ने बापा को वहाँ का राज्य दे दिया।[11]

यह कथा दैवीय चमत्कारों के साथ ऐतिहासिक चरित्रों तथा वर्तमान में इस क्षेत्र में विद्यमान दो मंदिरों के देवताओं का वर्णन करती है तथा साथ ही हमें यह भी बताती है कि यह प्रसंग मध्यकालीन मारवाड़ की ख्यातों से लेकर आधुनिक भारत सरकार की जनगणना सर्वेक्षण के दस्तावेजों में भी दर्ज है तथा वर्तमान में भी मेवाड़ तथा झालों का गुढ़ा गाँव के लोगों को मुँह जुबानी याद है। इस प्रसंग में हमारे अध्ययन विषय से संबंधित जो जानकारी अति महत्त्व की है वह है बप्पा रावल के राज्य शासन ग्रहण करने से पूर्व से ही इस क्षेत्र में देवी राठासण अपने महत्त्व सहित विद्यमान थी तभी ऋषि हारीत उनकी तपस्या में रत थे। मेवाड़ के शासकों में बप्पा रावल एक ऐसा चरित्र है जिनका कालक्रम वैसे तो विद्वानों में बहस का विषय रहा है। किन्तु फिर भी सामान्य समझ में 8वीं शताब्दी[12] के आसपास अधिकांश विद्वान उनका होना स्वीकार करते हैं, इस प्रकार देवी राठासण इस क्षेत्र में कम से कम 8वीं शताब्दी से विद्यमान है। यदि ऐसा नहीं भी हो तो इतना तो यह कथाएँ स्थापित करती ही है कि इस क्षेत्र में देवी का स्थान बप्पा रावल से भी पुराना है।

मरूवास स्थित देवी का यह मंदिर, मेवाड़ की प्राचीन राजधानी नागदा के प्रसिद्ध सास-बहु मंदिर (सहस्रबाहु) आदि ऐतिहासिक अवशेषों से कुछ ही दूरी पर स्थित है। नागदा के संबंध में यह ज्ञात है कि दिल्ली के सुल्तान इल्तुतमिश जिसका काल 1210 से 1236 है[13], ने नागदा को नष्ट किया था।[14] इस समय का ईस्वी 1222 का एक शिलालेख नांदेसमा गाँव में टूटे हुए सूर्य मंदिर के स्तम्भ पर खुदा है, जिसमें जैत्रसिंह की राजधानी नागद्रह (नागदा) होना तथा उनके श्रीकरण (श्री के चिह्न वाली मुख्य मुद्रा या मोहर करने वाले मंत्री) का नाम डूंगरसिंह लिखा है।[15]

जिससे जानकारी मिलती है कि 1222 ईस्वी तक मेवाड़ की राजधानी नागदा टूटी नहीं थी, तथा कई शिलालेखों व पुस्तकों के वर्णन से यह निश्चित होता है कि जैत्रसिंह (1213-1253) इस काल में मेवाड़ का राजा था।[16] इन जैत्रसिंह से 23 पीढ़ी पहले वर्ष 977 ईस्वी में खुमाण के पुत्र भर्तृपट्ट-द्वितीय राजा हुए जिनकी रानी राठौड़ वंश की राजकुमारी महालक्ष्मी थी[17] तथा जी.एस. ओझा इस प्रकार की संभावना प्रकट करते हैं कि यह हस्तकुण्डी अभिलेख में वर्णित हथूण्डिया (हठूण्डिया) राठौड़ मम्मट की पुत्री या बहिन थी।[18]

इस प्रकार यह उदाहरण इस काल में राठौड़ के गुहिलों से वैवाहिक संबंधों का सूचक है तथा जानकारी प्रदान करता है कि राजा अल्लट (मेवाड़), राठौड़ों के भाणजे थे। इतना ही नहीं, हस्तकुण्डी अभिलेख में ही वर्णित उपरोक्त राजा मम्मट के उत्तराधिकारी धवल के संदर्भ में यह उल्लेख आया है उसने शक्तिकुमार पर वाक्पति राज मुंज के आक्रमण के समय उसकी सहायता की थी[19] यह शक्तिकुमार राजा अल्लट के बाद हुए उत्तराधिकारियों में चतुर्थ स्थान पर थे।

धवल राठौड़ उस समय कितने शक्तिशाली शासक रहे होंगे कि ना केवल मालवा के परमारों के विरुद्ध उन्होंने आहड़ में गुहिलों की सहायता की अपितु अनहिलवाड़े (गुजरात) के चालुक्य राजा मूलराज के विरुद्ध आबू के परमार राजा धरणीवराह को आश्रय दिया[20] एवं दुर्लभराज चौहान (सांभर का चौहान) से नाडोल के चौहान राजा महेन्द्र की रक्षा की।[21] इन्हीं नाडोल के चौहानों के आगामी उत्तराधिकारी आल्हण देव की पत्नी अन्नल देवी राष्ट्रौड़ भी एक राठौड़ राजकुमारी थी, इसकी जानकारी हमें 1161 के नाडोल के चौहान कीर्तिपाल के दानपात्र से मिलती है।[22] यह विवेचन स्वत: सिद्ध करता है कि भले ही 10वीं से 13वीं शताब्दी के राव सीहा से प्राचीन इन वीर राठौड़ों के विषय में हमारी सूचनाएँ और शोध नगण्य है तथापि यह एक शिलालेख इसका साक्षी है कि वे अपने काल के शासन, प्रशासन, समाज, राजनीति आदि में शक्तिशाली रूप से प्रतिष्ठित थे। इनके अतिरिक्त भी इस काल में राठौड़ों के प्रभावशाली अस्तित्व के अन्य कई उदाहरण भी हैं जैसे धनोप के राठौड़ चच्च का अभिलेख[23] तथा बागड के राठौड़ों का अभिलेख[24] जो संभवत: छप्पनियाँ राठौड़ कहलाते हैं। अब प्रश्न यह है कि अजमेर के चौहानों, गुजरात के चालुक्य तथा मालवा के परमारों के विरुद्ध अपने पड़ोसी एवं रिश्तेदार गुहिलों व आबू के परमारों की सहायता करने वाले यह राठौड़ क्या कुल देवी रहित थे? विद्ग्धराज हस्तिकुण्डी अभिलेख में वर्णन आया है कि विद्ग्धराज धवल राठौड़ के दादा जो कि लगभग 916 ईस्वी में हुए, उन्होंने एक जैन मंदिर का निर्माण करवाया था इससे यहाँ सहज ही यह जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि क्या उन्होंने राजस्थान में कहीं अपनी कुल देवी की स्थापना नहीं की होगी?[25]

सामान्य ज्ञात तथ्य यह है कि राजस्थान के राठौड़ों की कुल देवी नागणेच्या जी है जिनका मंदिर राठौड़ों के पितृ पुरुष राव सीहा के पोते धूहड़ द्वारा नागाणा[26] में बनवाया गया।

तो क्या राव सीहा से प्राचीन राजस्थान के राठौड़ों की कुल देवी का यहाँ कोई मंदिर नहीं था? क्या बप्पा रावल की कथाओं में वर्णित तथा एकलिंग पुराण में मेदपाट की रक्षिणी के रूप में प्रतिष्ठित देवी राष्ट्रश्येना का मरूवास स्थित यह मंदिर प्राचीन राठौड़ों की कुल देवी का मंदिर हो सकता है? ठोस रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि प्राचीन राठौड़ों का मंदिर से क्या संबंध रहा, लेकिन नए शोध व तथ्यों के आने तक यह मान्यता भी पूर्ण रूप से संभव है कि उक्त मंदिर प्राचीन राठौड़ों की कुलदेवी का रहा होगा।

यहाँ एक तथ्य और है जो अपने नाम को लेकर अद्‌भुत आकर्षण रखता है वह है, मंदिर के ग्राम-स्थल का नाम 'मरूवास' होना। कर्नल जेम्स टॉड अपनी पुस्तक 'एनल्स एण्ड एण्टिक्वीटीज' में जोधपुर राज्य के इतिहास के संबंध में ''मारवाड़'' शब्द को मारूवार का अपभ्रंश बताते हैं जिसका यथार्थ में अर्थ ''मरूस्थल या मरूदेश'' से है इसका तात्पर्य 'मरे हुए जानवरों का देश' है। मुस्लिम लेखकों तथा अन्यों ने कई स्थान पर इसे 'मार' देश लिखा है जबकि कवियों ने 'मुरधर' भी कहा है इन सभी का अर्थ मरू देश ही है[27] तथा जिस प्रकार मेवाड़ गुहिलों के शासन का, ढूंढ़ाड कच्छवाहों का, हाडौती हाडों का शासन व सूचक है उसी प्रकार मारवाड़ राठौड़ों के शासन का सूचक है अत: नाम के संबंध में यह अनुमान होता ही है कि मरूवालों का वास ही मरूवास है।

जैसा कि पूर्व में बताया गया है कि राष्ट्रकूटों (राठौड़ों) के इतिहास पर कार्य करने वाले पण्डित विश्ववेश्वरनाथ रेऊ भी इस मंदिर को राठौड़ों की कुल देवी राष्ट्रश्येना के मंदिर रूप में उल्लेखित कर चुके हैं साथ ही ये राठौड़ों की कुल देवी का 'राष्ट्रश्येना' भी एक नाम होना बताते हैं।[28]

सिंढ़ायच दयालदास द्वारा रचित ख्यात देश दर्पण में कुल अम्बा के रूप में राठेश्वरी, पंखिणी, चक्रेश्वरी तथा नागणैची के नाम आए हैं[29] तथा श्री नारायण (भगवान) से प्रारम्भ हुए वंश में क्रम संख्या 125 पर, देवी राठेश्वरी के वरदान से उत्पन्न राजा रठवर के बाद ही कुल के रठ्वर[30] (रठवड़) कहलाने की जानकारी देते हैं।

देवी राष्ट्रश्येना के इस मंदिर का यदि अब अध्ययन किया जाए तो पता चलता है कि इसके धरातल से उठी बाहरी दीवारी का निचला हिस्सा-तेरहवीं शताब्दी के बाद का नहीं है जबकि अन्य भागों में तब से वर्ष 2001 तक समय-समय पर अनेक जीर्णोद्धार के कार्य हुए हैं, जिसके कारण स्थापत्य मिश्रित प्रकृति का है। नागर शैली में निर्मित इस मंदिर के भवन निर्माण में धूसर इमारती पत्थर के साथ संगमरमर का प्रयोग दिखाई पड़ता है, इसे ऊँची कुर्सी देकर बनाया है। जिसके सभामण्डप के तीन द्वार हैं अर्थात् वर्तमान में यह त्रिमुखी है जबकि इसका चौथा हिस्सा गर्भगृह का है जिसके ऊपर मंदिर का शिखर बना है। मंदिर के शिखर में पत्थर की पट्टियों से हुए बेढंगी जीर्णोद्धार को स्पष्ट देखा जा सकता है, इस शिखर के मध्य जंघा भाग पर किसी प्रकार के सिंह (यालि) की मूर्ति नहीं है तथा मंदिर पर कोई ध्वजा भी नहीं है, शिखर का निर्माण ईंटों से हुआ है जबकि मध्य भाग की दीवारों में पत्थर का प्रयोग है, गर्भगृह की तीन तरफा बाह्य दीवारों पर देवी की मूर्तियाँ हैं जिनमें बायीं ओर प्रेतवाहिनी चामुण्डा है जबकि दायीं ओर तथा पार्श्व में भी चामुण्डा देवी के ही किन्हीं स्वरूपों की मूर्तियाँ हैं जिनमें लांछन, बहुत अधिक सिन्दुर लगाने के कारण अस्पष्ट है अत: स्वरूप की पहचान निश्चित नहीं है। देवियों की इन मूर्तियों में से किसी देवी के कोष्ठक (ताक/आले) के अलंकरण स्पष्ट रूप से बाहर देखे जा सकते हैं जबकि कोई प्रतिमा दीवार में अधिक अंदर धंसी है, प्रतिमाओं को भित्ति में स्थापित करने में दिखाई पड़ने वाले इस अंतर से भी जानकारी होती है कि यह जीर्णोद्धार का प्रभाव है। यहाँ ध्यान देने योग्य एक तथ्य यह भी है कि बाहरी भित्तियों की इन मूर्तियों (चामुण्डा देवी) तथा श्री एकलिंग जी मंदिर के बाहर स्थिति भैरव प्रतिमा तथा गणेश प्रतिमा एवं उनके कोष्ठक (ताक/आला) निर्माण शैली एक समान है एवं ऐसी ही चामुण्डा देवी की 10वीं शताब्दी की प्रतिमाएँ गंगूकुण्ड के भग्नावशेषों में विद्यमान है।

वहीं अब सभामण्डप को देखें तो इसके तीन द्वारों के साथ इसकी रचना ऐसी बन पड़ती है, यह अष्टकोणीय है जबकि इसकी छत वृताकार एवं अलंकरण रहित है, जिसका भार अट्ठारह अलंकृत स्तम्भों पर है। यह सभी स्तम्भ अष्टकोण पर सोलहकोण की आकृति देकर बनाए हैं। जिनके ऊपरी भाग में घण्टी-सांकल का अलंकरण है जिसके ऊपर कीर्तिमुखों की रचना की गई है फिर इनके ऊपर वृत्ताकार आकृति है जिसके ठीक ऊपर भारवाही चौकड़ी है सामान्यत: अन्य मंदिरों में इस चौकड़ी पर कीचक की आकृति बनी होती है। किन्तु इस मंदिर की चौकड़ियाँ किसी प्रकार के अलंकरण से रहित हैं, आभास होता है कि इन स्तम्भों को नीचे बनाकर बहुत नियोजित प्रकार से ऊपर चढ़ाया गया होगा, ऐसे आभास का एक कारण मंदिर की दुर्गम ऊँचाई तथा शिखर पर स्थान की कमी का होना है। इन सभी स्तम्भों पर विभिन्न काल में हुए जीर्णोद्धार के चिह्न स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। स्तम्भों को शीर्ष से मिलाने की सममिति में भी अंतर दिख जाता है। वहीं सबसे आधुनिक जीर्णोद्धार के चिह्न तीन बाह्य स्तम्भों पर दिखते हैं जिन्हें 2001 में आए भुज भूकम्प के प्रभावों के बाद बेढ़ंगे तरीके से सीमेण्ट के हाथी जैसे पाँव बनाकर सहारा दिया गया। जीर्णोद्धार का एक अन्य चिह्न यह भी

है कि गर्भगृह के ठीक सामने वाले स्तम्भ के ऊपरी भाग में मध्यकाल के चूने की मोटी परत से बाहर झांकता एक अभिलेख है जिसका कुछ अंश भी चूने से ढंका है।

यह अभिलेख संवत् 1689 (विक्रम संवत) का है। इस प्रकार इस अभिलेख में वर्ष 1632 ईस्वी अर्थात् विक्रम संवत 1689 के चैत्र महीने के सोमवार (संभवत) को किसी यात्रा के संबंध में.........'किन्हीं' दास नाथ पुत्र जवंता जी की कथा संबंधी कोई बात लिखी गई है।

(क्रमशः)

संदर्भ ग्रंथ सूची :– 1. श्रीकृष्ण जुगनु, भंवर शर्मा, श्रीमद एकलिंग पुराणम, आर्यावर्त संस्कृति संस्थान, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2011, पृ. 120, 2. श्रीकृष्ण जुगनु, भारतीय ऐतिहासिक प्रशस्ति परम्परा एवं अभिलेख, आर्यावर्त संस्कृति संस्थान, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2019, पृ. 181, 3. वही, पृ. 182, 4. विश्वेश्वरनाथ रेऊ, राष्ट्रकूटो (राठौड़ो) का इतिहास, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, पंचम संस्करण, 2016, पृ. 35, 5. श्रीकृष्ण जुगनु, भंवर शर्मा, श्रीमद एकलिंग पुराण, आर्यावर्त संस्कृति संस्थान, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2011, पृ. 25, 6. वही, पृ. 25, 7. वही, पृ. 123, 8. वही, पृ. 124, 9. वही, पृ. 124, 10. सी.एस. गुप्ता (1967), सेंसस ऑफ राजस्थान वॉल्यूम-VI-C पब्लिशर्स, पृ. 4, 11. गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, चतुर्थ संस्करण, 2015, पृ. 119, 12. वही, पृ. 117, 13. जयचन्द्र विद्यालंकार, भारतीय इतिहास की मीमांसा, हिन्दी भवन, इलाहाबाद, 1960, पृ. 99-100, 14. गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, चतुर्थ संस्करण, 2015, पृ. 158, 15. वही, पृ. 159, 16. वही, पृ. 159, 17. वही, पृ. 124, 18. वही,पृ. 125, 19. गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, चतुर्थ संस्करण, 2015, पृ. 132, 20. गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा, जोधपुर राज्य का इतिहास, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, छठा संस्करण, पृ. 87, 21. वही, पृ. 87, 22. वही, पृ. 88, 23. श्री कृष्ण जुगनु, राजस्थान के प्राचीन अभिलेख, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, प्रथम संस्करण, 2013, पृ. 78, 24. गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा, जोधपुर राज्य का इतिहास, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, छठा संस्करण, पृ. 89, 25. वही पृ. 87, 26. वही, पृ. 109, 27. बलदेव प्रसाद मिश्र, ज्वाला प्रसाद मिश्र तथा मुंशी देवी प्रसाद, जोधपुर राज्य का इतिहास (कर्नल जेम्स टॉड कृत), यूनिक ट्रेडर्स, जोधपुर, पृ. 2, 28. विश्वेश्वर नाथ रेऊ, राष्ट्रकूटों राठौड़ों का इतिहास, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, पंचम संस्करण, 2016, पृ. 34, 29. के.के. जैन (प्रधान संपादक) 1989, ख्यात देशदर्पण सिंढाचय व दयालदास कृत (बीकानेर राज्य का इतिहास), राजस्थान राज्य अभिलेखागार बीकानेर, पृ. 30. वही, पृ. 5

पृष्ठ 26 का शेष

एकलिंग दीवान राष्ट्र गौरव राणा क़ीक़ा

शरण दी और उनको प्रोत्साहन दिया जिसके कारण चावंड की चित्रकला शैली चर्मोत्कर्ष पर पहुँची। चावंड में ही महाराणा प्रताप के आदेश पर पंडित चक्रपाणी मिश्र ने कई ऐतिहासिक ग्रंथों की रचना की जिसमें राज्याभिषेक पद्धति, मुहूर्तमाला, विश्ववल्लभ प्रमुख हैं। माघ शुक्ल एकादशी विक्रम संवत 1653 (ईसवी सन 19 जनवरी, 1597) के दिन मेवाड़ रत्न महाराणा प्रताप का स्वर्गवास हुआ। मेवाड़ की प्रजा के राणा क़ीक़ा चावंड बंडोली की समाधि में लीन हो गये।

1576 हल्दीघाटी युद्ध से लेकर स्वर्गवास तक महाराणा प्रताप ने छोटे बड़े 30 से अधिक युद्ध लड़े और अधिकांश युद्धों में विजय हासिल की। ऐसे तो महाराणा प्रताप के हर युद्ध में सर्वसमाज की पूर्ण भागीदारी रही लेकिन विशेष रूप से भील जनजाति का जो आजीवन सहयोग रहा, संपूर्ण मेवाड़ वासी इसके सदैव ऋणी रहेंगे।

महाराणा प्रताप का पूरा जीवन प्रेरणादायी है। उन्होंने कभी मुगलों के सामने आत्मसमर्पण नहीं किया। अपनी मातृभूमि व प्रजा के लिए संघर्ष किया। जो व्यक्ति अपने कर्तव्य व मानव कल्याण के लिये सदैव प्रयत्नशील रहता है उसे युग युगांतर तक स्मरण रखा जाता है। हर व्यक्ति को एक बार अपने जीवनकाल में ऐसे प्रातः स्मरणीय महापुरुष के समाधि स्थल महातीर्थ चावंड के दर्शन अवश्य करने चाहिए।

●

अपनी बात

श्री क्षत्रिय युवक संघ की शाखाओं को देखने वाले अक्सर उसे बच्चों का खेल बताते हैं। हाँ, यह खेल है; नियमों में बन्धकर शारीरिक प्रक्रिया का खेल है, युद्ध है। यह बाहरी युद्ध है। पर युद्ध केवल बाहरी ही नहीं होता, अन्तर में भी युद्ध चलता है। बाहरी युद्ध में अनेक प्रकार के दाव पेच चलते हैं तो अन्तर में चलने वाले युद्ध के दाव पेच भिन्न प्रकार के होते हैं। बाहर का युद्ध, सभी प्रक्रिया, भीतर के युद्ध की केवल छायाएँ मात्र ही हैं। एक युद्ध बाहर हुआ महाभारत का–'धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे'। एक तो कुरुक्षेत्र था जहाँ युद्ध हुआ और साथ-साथ एक युद्ध भीतर चल रहा था क्योंकि दूसरे से लड़ना आसान है, स्वयं से लड़ना कठिन है। दूसरे को काटना आसान है, अपने को काटना कठिन है। दूसरे को मारना आसान है, अपने को मारना कठिन है।

साधना का अर्थ भी यही होता है, अपने को काटना। अपने को ऐसा पोंछ डालना और मिटा डालना कि नाम और निशान न रह जाए। जब 'मैं' नहीं बचूंगा तभी साधना की सिद्धि है। जब तक 'मैं भाव' है तब तक सिद्धि नहीं उतर पायेगी। तब तक तो अन्दर ही इतना कुछ भरा पड़ा है कि जगह ही नहीं है। साधना की सिद्धि को यदि उतारना है तो 'मैं' को सिंहासन से उतारना होगा। इस 'मैं' को सिंहासन से उतारने का युद्ध इस बाहरी प्रक्रिया के साथ-साथ संघ में अन्तर में भी चलता रहता है।

जो साधना के सच में योद्धा है वे ऐसे टूट पड़ते हैं युद्ध में, जैसे पतंगा दीवाना हुआ, पागल हुआ दीप शिखा पर टूट पड़ता है, अग्नि में कूद पड़ता है। पतंगा जब दीप शिखा पर कूदता है, पतंगा जब अग्नि में उतरता है, तो ठीक वैसी ही घटना घट रही है जैसे साधना जब सिद्धि में उतरती है, भक्त जब भगवान में उतरता है। जिनके भीतर गरिमा है, गौरव है, जिनके भीतर मनुष्य होने की अर्थवत्ता का थोड़ा सा बोध है, जिन्हें पता है कि न मालूम कितनी कोटियों के बाद, न मालूम पशुओं, पक्षियों, पहाड़ों, वृक्षों की कितनी यात्राओं के बाद मनुष्य योनि मिली है, वे इसे यों ही नहीं गंवा देना चाहते, इससे सार्थक प्राप्ति करना चाहते हैं। इस अवसर को ठीक-ठीक भुनाना है।

बाहर की प्रक्रियाएँ थोड़ी ही देर चलती हैं। सुबह शुरू तो सांझ समाप्त। लेकिन आन्तरिक युद्ध जो शुरू हुआ तो समाप्त नहीं होता, जब तक कि 'मैं' ही समाप्त न हो जाए। यह युद्ध अनवरत है, अखण्ड है, प्रतिपल चलता है। अपने आन्तरिक निखार के युद्ध, 'मैं' को समाप्त करने के युद्ध में क्षण भर का विश्राम भी नहीं है। इसमें दिन और रात का कोई भेद नहीं।

कृष्ण ने अर्जुन से गीता के माध्यम से कहा-'या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी'। जब सब सो जाते हैं तब भी साधु या सिद्ध जागता है। इसका अर्थ यह नहीं कि सिद्ध रात में बैठा रहता है या खड़ा रहता है। सिद्ध भी सोता है पर उसकी देह भी सोती है। सोते में भी सिद्ध जागता है, अर्थात् जानता है कि मैं सो रहा हूँ। उस स्थिति में भी उसके चैतन्य का दीपक जलता रहता है। यह युद्ध अत्यन्त कठिन है क्योंकि जिससे युद्ध हो रहा है, उसकी देह नहीं है। मन से ही युद्ध हो रहा है। यह तलवार मन के खिलाफ उठी है और अपने ही मन के खिलाफ उठी है। मन को काटे बिना कोई उपाय नहीं। जब तक अमन की दशा न आ जाए, तब तक कोई उपाय नहीं।

मन के पार जाना है। मन संसार है। संसार न बाजार में है, न पत्नी में है, न पति में है, न बच्चों में, न धन में है, न मकान में है, न दुकान में है। मन में संसार है। ये जो सतत् मन में चल रहे विचार, वासनाएँ और ऊहापोह तथा स्मृतियाँ और कल्पनाएँ, यह सारा जो जाल है मन का, यही संसार है। इसे काटना है। इसे समाप्त करना है। इसे भष्मीभूत कर देना है। मन की लिप्तता को समाप्त करने का अभ्यास चलता रहे यह आवश्यक है।

सुशिक्षा !
सुसंस्कार !!
सुविचार !!!
मातेश्वरी विद्या मन्दिर उ.मा.वि., भिंयाड़
बाड़मेर जिले के शिव तहसील का सर्वश्रेष्ठ परीक्षा परिणाम देने वाला एकमात्र विद्यालय
मातेश्वरी गुरूकुल छात्रावास, भिंयाड़
क्यों भागें शहरों की ओर... ???
कक्षा 12वीं (कला वर्ग) परीक्षा परिणाम एक नजर सत्र 2021-22
क्यों भागें शहरों की ओर... ???
History - 100/100
92.80% चैलू बारहठ भिंयाड़
Pol. Science - 100/100
92.60% भवानी दान बालेवा
89.80% गायत्री प्रजापत
89.60% गोपालदान माड़वा
88.20% हिंगलाजदान
86.40% कुन्दनदान
86.00% मेतू कंवर
84.80% अशोक दान
83.80% श्रीपालसिंह
83.20% पवनी कुमारी
81.80% हितेष चारण
80.20% पूरणसिंह सोनू
कक्षा 10वीं बोर्ड सत्र 2021-22 के चमकते सितारे .....
सामाजिक 100/100
95.00% गरिमा बारहठ
92.83% प्रेमदान आरंग
91.67% प्रकाश कुमार आरंग
91.50% रघुनाथसिंह राजपुरोहित
91.17% गोविन्ददान
91.00% पुखराजसिंह राजपुरोहित
90.50% राजेश कुमार जांगिड़
90.17% रमेशसिंह राजपुरोहित
89.33% दिनेश प्रजापत
89.33% कुमेरदान आरंग
88.33% सुरेन्द्रसिंह राठौड़
87.83% सुरेन्द्रसिंह रतनू
87.50% अशोकसिंह राजपुरोहित
87.33% जोगेश कुमार
86.00% गुलाब कंवर
85.83% दिलीपसिंह चारण
85.50% देवीसिंह राजपुरोहित
85.00% चैलूसिंह राठौड़
84.33% विभू सैन
82.83% भवन कुमार
81.67% धर्मेन्द्रसिंह राजपुरोहित
81.50% हेमसिंह राठौड़
80.50% ममता माली
80.00% घनश्याम कुमार
कक्षा 12वीं परीक्षा परिणाम सत्र 2021-22
क्र.सं. | प्रतिशत | संख्या
1. | 90% ऊपर | 02
2. | 80% से 90% | 10
3. | 70% से 80% | 10
4. | 60% से 70% | 12
5. | द्वितीय श्रेणी | 03
6. | अनुपस्थित | 01
7- | कुल विद्यार्थी | 38
कक्षा 10वीं परीक्षा परिणाम सत्र 2021-22
क्र.सं. | प्रतिशत | संख्या
1. | 90% ऊपर | 08
2. | 80% से 90% | 16
3. | 60% से 80% | 32
4. | द्वितीय श्रेणी | 15
5. | तृतीय श्रेणी | 01
6. | अनुपस्थित | 03
7- | कुल विद्यार्थी | 75
कक्षा 5वीं परीक्षा परिणाम सत्र 2021-22
ग्रेड | प्रतिशत | संख्या
A | 86% - 100% | 38
B | 71% - 85% | 21
C | 51% - 70% | 08
अनुपस्थित | 02
कुल विद्यार्थी | 69
कक्षा 8वीं परीक्षा परिणाम सत्र 2021-22
ग्रेड | प्रतिशत | संख्या
A | 86% - 100% | 28
B | 71% - 85% | 26
C | 51% - 70% | 03
कुल विद्यार्थी | 57
अटल टिंकरिंग लैब
ATL छात्रों को सोचने का, खोज करने का, कोशिश करने का, विचार करने का और कुछ अलग ही करने का पूरा अवसर ATL से मिलता है
MVM अटल टिंकरिंग लैब की पहल का उद्देश्य भारतीय शिक्षा प्रणाली में बदलाव लाना है जहां 12 साल जैसी कम उम्र के बच्चे भी तकनीकी नवीनीकरण की दुनिया से रूबरू होते है ।।
MVM , ATL लैब , जिज्ञासा को बढ़ावा देती है और छोटी उम्र में ही नवीनीकरण के लिए बच्चों को तैयार करती है ।
MVM अटल टिंकरिंग लैब प्राचीन भारतीय गुरूकुल शिक्षा प्रणाली और दुनिया की सबसे सफल शिक्षा प्रणाली है
प्रवेश प्रारम्भ
वाहन सुविधा
विद्यालय भवन
यदि कड़ी मेहनत आपका हथियार है तो सफलता आपकी गुलाम हो जायेगी।
PLAY-SCHOOL
"COME PLAY WITH A PURPOSE"
प्ले स्कूल (Play School)
जिसमें प्ले ग्रुप, नर्सरी, के.जी., का पृथक संचालन।
3 से 4 वर्ष तक के बच्चों का प्रवेश
English Medium
प्रबन्धक
राजेन्द्रसिंह भिंयाड़
मो. 9414655723
विद्यालय व्यवस्थापक
भगवानसिंह राठौड़
मो. 9116055723
छात्रावास व्यवस्थापक
गिरवरसिंह राजपुरोहित
मो. 9587462272
KRISHNA OFFSET, BMR#9928671952

जुलाई सन् 2022
वर्ष : 59, अंक : 07

समाचार पत्र पंजी.संख्या R.N.7127/60
डाक पंजीयन संख्या – Jaipur City /411/2020-22

संघशक्ति

ए–8, तारानगर, झोटवाड़ा,
जयपुर–302012
दूरभाष : 0141–2466353

E-mail : sanghshakti@gmail.com
Website : www.shrikys.org

श्रीमान् ....

....

....

स्वत्वाधिकारी श्री संघशक्ति प्रकाशन प्रन्यास के लिये, मुद्रक व प्रकाशक, लक्ष्मणसिंह द्वारा ए–8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर से : गजेन्द्र प्रिन्टर्स, जैन मन्दिर सांगाकान, सांगों का रास्ता, किशनपोल बाजार, जयपुर फोन : 2313462 में मुद्रित। सम्पादक–लक्ष्मणसिंह